* श्रीहरिः *

आदर्श-चरितावली।

अर्थात

स्वावलम्बी, परोपकारी, देशभक्त, राजभक्त तथा लोककल्याणकारी महापुरुषों के पवित्र जीवनचरित्रों का संग्रह।

महज्जनों के चरित पाठ कर लख उन के आचरण पुनीत।
बनो विनम्र उदार हृदय तुम सीखो उन की भव्य सुरीति।
जिस पथ का अवलम्बन कर के हुए महज्जन चिरस्मरणीय।
उसी मार्ग को लक्ष्य बना कर तुम भी हो सकते वरणीय॥

लेखक :—

पण्डित शिवसहाय चतुर्वेदी,

देवरी (सागर) निवासी।

सन् १९१५ ई०

हितैषी-ग्रंथमाला तृतीय पुष्प ।

आदर्श-चरितावली ।

अर्थात्

स्वावलम्बी, परोपकारी, देशभक्त, राजभक्त तथा लोक कल्याणकारी महापुरुषों के पवित्र जीवन-चरित्रों का संग्रह ।

लेखक—

पण्डित शिवसहाय चतुर्वेदी ।

प्रकाशक—

हिन्दी-हितैषी-कार्यालय,

देवरी, जिला सागर ।

बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव के प्रबन्ध से स्टैंडर्ड प्रेस प्रयाग में मुद्रित ।

प्रथम संस्करण } सं० १९७२ वि० { मूल्य ।-)

विषय सूची ।

वैदेशिक-आदर्श चरित्र-

भारतीय ऐतिहासिक-आदर्श चरित्र--

पौराणिक-आदर्शचरित्र-

समर्पणपत्र ।

यह पुस्तक

मातृभाषा हिन्दी के सुकवि तथा सुलेखक,

देवरी ज़िला सागर निवासी,

श्रीयुत सैय्यद अमीर अली (मीर)

डिपुटी इन्सपेक्टर स्टेट उदयपुर की

सेवा में

उन की साहित्य-प्रेमवर्द्धिनी शिक्षा से उपकृत हुए

लघुमति लेखक द्वारा

सादर समर्पित ।

निवेदन।

महापुरुषों के चरित्र कितने उपदेशपूर्ण, पथ प्रदर्शक तथा लाभकारी होते हैं इस स्थल पर उसके बतलाने की आवश्यकता नहीं है—क्योंकि उन की उपयोगिता सभी स्वीकार करते हैं। एक पुस्तक में अनेक महापुरुषों की जीवनियों का संग्रह पाठकों और विशेषकर विद्यार्थियों के लिये विशेष उपयोगी हो, अतएव हम ने हिन्दी में ऐसी पुस्तक की आवश्यकता समझ कर कई देशी. विदेशी तथा पौराणिक महात्माओं के पुण्यचरित्रों का संक्षिप्त वर्णन इस पुस्तक में संग्रहीत किया है। इस पुस्तक के तीनों परिच्छेदों में और कई सुयोग्य पुरुषों के जीवनचरित सम्मिलित किये जा सकते थे, परन्तु इस बार समयाभाव के कारण हम ऐसा नहीं कर सके। यदि सुयोग मिला तो अगले संस्करण के समय चरित्रों की संख्या और बढ़ा दी जावेगी।

इस पुस्तक के लिखने में हमारे प्रिय मित्र बाबू दशरथ बलवंत जाधव ने मुझे अच्छी सहायता दी है—कई चरित्रों की विशेष बातें उनकी अनुमति ही से लिखी गई हैं अतएव हम उनके परम कृतज्ञ हैं।

देवरी (सागर)
रामनव[illegible] सं० १९७२ वि०

शिवसहाय चतुर्वेदी।

॥ ओम ॥

आदर्श-चरितावली ।

प्रथम परिच्छेद ।

वैदेशिक आदर्श-चरित्र ।

जनरल बूथ ।

इङ्गलैण्ड में जिस महात्मा के उपदेश और परिश्रम से असंख्य पापी और दुराचारी मनुष्य कुमार्ग को छोड़कर सदाचारी और धर्म प्रेमी बन गये उस महात्मा का संक्षिप्त चरित्र हम नीचे लिखते हैं ।

तुमने सुना होगा कि ईसाइयों में मुक्तिफ़ौज नाम की संसार व्यापिनी एक धार्मिक संस्था है । उस के स्थापित करने वाले कर्मवीर नेता जनरल बूथ का जन्म सन् १८२९ की १०वीं अप्रैल को इङ्गलैण्ड के नाटिंघम नगर में एक ग़रीब घराने में हुआ । इसी कारण उन्हें कालेजों की उच्च शिक्षा नसीब नहीं हुई । कुछ धर्मयाजकों की कृपा से उन्होंने एक छोटी सी पाठशाला में साधारण शिक्षा प्राप्त की थी । ये छुटपन से ही धर्मानुरागी थे । जवान होने पर लन्दन की चर्च में शामिल होकर उपदेश देने लगे । परन्तु धार्मिक

सम्प्रदायों की संकुचित छाया में रह कर उन्होंने अपनी उन्नति करना कठिन समझ कर Hallelujah Band नामक एक नया धर्म प्रचारक दल तैयार किया। यह दल गांव गांव में जाकर वहाँ के जेल से छूटे हुए अपराधियों के घरों पर, शराब की दूकानों तथा जुआड़ियों के अड्डों पर घूम घूम कर उपदेश करने लगा। कुछ समय के बाद देखते ही देखते—जिन लोगों का अधिक समय प्रायः जुआ चोरी और मद्यपान करने में व्यतीत होता था, जो भूलकर भी अच्छे कामों का नाम भी न लेते थे, जो सदा ईश्वर से विमुख रहते थे, वे मि० बूथ के उपदेश से इस मण्डली में सम्मिलित होकर धर्मज्ञ बन गये।

जनरल बूथ ने यह भलीभाँति समझ लिया कि लोगों की गिरती हुई शोचनीय दशा का एक मात्र कारण दरिद्रता है। पेट की ज्वाला शान्त करने के लिये लोग बुरे से बुरे काम करने से नहीं चूकते। मनुष्य भूख की ज्वाला से दग्ध होकर चोरी, नरहत्या, ठगाई और असत्यभाषण करता है। पापी पेट ही के कारण सहस्त्रों स्त्रियाँ अपनी कुलीनता पर पानी फेर देती हैं। राक्षसी भूख की ताड़ना से माताएं पिशाचिनी के समान आचरण करके अपने भूखे बालक के मुख का ग्रास छीन लेती हैं! इन्हीं आश्रमहीन, भूखे और पाप ताप से जर्जरित लाखों प्राणियों की आर्तध्वनि ने उस विशाल हृदय कर्मवीर पुरुष को कभी स्थिर नहीं बैठने दिया। जनरल बूथ ने यह सोच कर कि इस नैतिक दुरवस्था के मूल कारणीभूत दारिद्र को समाज से दूर करना, थोड़े दिन का और सहज काम नहीं है; उन्होंने उत्साही और काम करने वाले लोगों का एक दल तैयार करके धर्मोपदेश और भोजन वितरण करने का काम बड़े ज़ोर शोर से प्रारम्भ कर दिया। इन लोगों

के उद्योग से समाज से बहिष्कृत, दरिद्री और पापी नर नारियों ने इस दल में शामिल होकर इस की संख्या बहुत बढ़ा दी।

जनरल बूथ ने सन् १८७६ ई० में इस विराट् मंडली को एक नये रूप में बदल दिया। उन्होंने अंग्रेजी फौज के समान अपनी मंडली के नियम बनाकर मंडली के कर्मचारियों को कप्तान, मेजर, कर्नल आदि की उपाधियां दीं और इस सैन्य-दल का नाम The Salvation army अर्थात् 'मुक्ति-फौज' रक्खा। मि० बूथ इस के सेनापति हुए। इस फ़ौज का काम पापों के विरुद्ध चढ़ाई करना ठहरा और तदनुसार उसने खुले तौर से सभा सोसाइटियों में सरल भाषा में उपदेश देना, गांवों गावों घूम घूम कर लोगों को पाप से बचाने और सुचाल चलने का उपदेश देना, रोगियों की सेवा और औषधि करना, शराब की दुकानों तथा जेलखानों के फाटकों पर जा जाकर लोगों को समझाना और नाइट स्कूल (नैश विद्यालय) खोल कर उन्हें शिक्षा देने आदि लोकोपकारी कामों की प्रतिष्ठा की। कुछ दिनों के पश्चात जनरल बूथ की इस धर्म प्रचारक मंडली के विरुद्ध कई लोग उठ खड़े हुए और यहां तक कि सरकार भी इस फौज के नाम से डर कर उसके कामों को रोकने लगी। परन्तु यह हाल बहुत दिनों तक नहीं रहा। थोड़े ही समय के भीतर इस के उपदेशों से हजारों आदमियों ने उन्नति करली। इस कारण जनरल बूथ की प्रशंसा सारे संसार में फैल गई। अब मुक्तिफ़ौज का काम इङ्गलैंड ही के भीतर परिमित न रहा वह क्रमशः सारे यूरोप और संसार भर में फैल गया। भारतवर्ष और लंका में भी इस मंडली की शाखाएं स्थापित हुई।

जनरल बूथ की इस दीनजनोपकारिणी संस्था की वृद्धि बड़ी शीघ्रता से हुई। सन् १८८३ ई० में इंग्लैंड देश के पूर्व भाग में इसकी १४२ शाखाएं थीं, जिनमें सब मिलकर १०६७ कर्मचारी काम करते थे। उस समय संसार के अन्य देशों में भी इसकी १० १५ शाखाए थीं। सन् १८९० ई० में जनरल बूथ ने "In Darkest England and the way out" नाम की एक बड़ी पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में मुक्ति फ़ौज का सारा विवरण लिखा गया था और इसमें पतित लोगों को सुधारने के अनेक उपाय बतलाये गये थे। जब लोगों ने इस पुस्तक को पढ़ा तो उन्होंने लाखों रुपया इस संस्था को देना प्रारम्भ कर दिया। इस सहायता के मिलने से संस्था की दिन पर दिन आश्चर्य जनक उन्नति होने लगी। इस समय उसकी ८९७२ शाखाए संसार के भिन्न भिन्न ५८ देशों में काम करती हैं। इन शाखाओं में सब मिल कर २९२०३ स्त्री पुरुष काम करते हैं। दुराचार, आपत्ति और पाप-पंक में फंसे हुए लोगों की सुधारणा के हेतु जनरल बूथ ने लगभग ९०० स्वतन्त्र शाखाए स्थापित की हैं। ये शाखाए लोकसेवा के कार्य में सदैव तत्पर रहती हैं। इनके द्वारा एक वर्ष के भीतर ६३२७२४९ वस्त्रहीन मनुष्यों को सोने के लिये बिछौने और ११८३९४३७ भूखों को अन्न बाँटा गया था! इस संस्था की पुस्तकें संसार की ३३ भाषाओं में छपती हैं। जिन देशों में ये पुस्तकें बाँटी जाती हैं और जिन देशों में उपदेश दिये जाते हैं वे उसी देश की भाषा में होते हैं। भारतवर्ष में मुक्तिफौज के २॥ हजार से अधिक कर्मचारी काम कर रहे हैं। मुक्तिफ़ौज के द्वारा स्थापित किये हुए स्कूलों में १० हजार से अधिक भारतीय विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। आलसी, और उद्योगहीन पुरुषों को काम के लगाने के

लिये इस फ़ौज ने दो हज़ार से अधिक कपड़े बुनने के करघे बांटे हैं। कपड़ा बुनने और हस्तकला कौशल्य का काम सिखाने के लिये उसने कई स्कूल खोले हैं। लगभग १ लाख कैदियों और ४,५ लाख दूसरे असत्कर्म करने वालों के सुधारने के लिये यह संस्था पूर्ण उद्योग कर रही है। कुष्ट आदि भयकर रोगों से बचाने के लिये बहुत से औषधालय खोले गये हैं।

बूथ के इस कार्य में उनकी धर्म्मपत्नी कैथराइन बूथ ने भी खूब सहायता दी थी। सन् १८९० ई० में उनका स्वर्गवास हो गया। वे मुक्तिफ़ौज के स्त्री विभाग की परिचालिका थीं। और उन्होंने १० वर्ष तक पतित नारियों के उद्धार के लिये खूब प्रयत्न किया था।

जनरल बूथ अश्रान्त परिश्रमी पुरुष थे। वे इस कार्य की देख रेख के लिये पृथ्वी के समस्त देशों में भ्रमण किया करते थे। भारतवर्ष में भी दो बार आये थ। उनका स्वभाव बहुत सरल और मधुर था। किसी तरह का गर्व या अहंकार उनके चरित्र को स्पर्श तक न कर सका था। उनको रहन सहन भी बहुत सादा था। वे मांस और मदिरा को छूते भी न थ और सदैव परिमित आहार विहार किया करते थे।

जनरल बूथ यद्यपि अधिक लिखे पढ़े नहीं थे परन्तु उन्होंने अपने असाधारण परिश्रम और सुदृढ़ चरित्र बल से अनेक विघ्न और आपत्तियों को सहते हुए संसार में जो महान् कार्य कर दिखलाया उससे उनके चरित्र की महत्ता भली भाँति जानी जाती है। आज समस्त यूरोप सिर नवा कर यह बात स्वीकार करता है कि जनरल बूथ बर्तमान

युग के सर्व श्रेष्ठ धर्मनेता थे। परन्तु यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि मि० बूथ केवल धर्मनेता ही न थे बरन उन्होंने अगणित आशा और लक्ष्यहीन नर नारियों के अंधकारमय हृदय को आनन्द और उल्लास के प्रकाश से उज्ज्वल किया है। पतित लोगों के चिर-दुखी जीवन को अपने प्रेम द्वारा नव-जीवन प्रदान किया है, भूखों को अपने हाथ से भोजन खिला कर उन्हें सन्तुष्ट किया है।

इस विश्वहितैषी महात्मा का २० अगस्त सन् १९१२ ई० को ८३ वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। उक्त महात्मा का नश्वर शरीर भले ही नष्ट हो जाय, परन्तु उसने संसार के मंगल के लिये जो जो उज्ज्वल कार्य किये हैं, वे अनन्त काल तक जगमगाते रहेंगे।

जनरल बूथ का चरित्र सर्वथा अनुकरणीय है। इस समय हमारे देश में ऐसे ही कर्मवीरों की आवश्यकता है। यथार्थ में सब दुष्कर्मों की जड़ दरिद्रता ही है। यदि यहाँ के उपदेशक और नेता लोग उपदेशों के साथ साथ भूखे, रोगी और पापों से पीड़ित लोगों की ओर ध्यान देने लगें तो लाखों दुःखी लोगों का जीवन सुधर जाय और उनमें मनुष्यत्व आजावे।

बुकर टी० वाशिंगटन।

आफ्रिका में नीग्रोनाम की एक प्राचीन जाति है। सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में इन लोगों को पकड़ कर अमेरिका में गुलाम बनाकर बेचने का काम शुरू हुआ और यह काम लगातार दो अढ़ाई सौ वर्षों तक चालू रहा। इसने समय

तक दासत्व में रहने के कारण उन लोगों की अवस्था बहुत ही शोचनीय और हृदयद्रावक हो गई थी। अमेरिका के निवासी इन गुलामों के साथ पशुओं के समान व्यवहार करते थे। वे बेचारे साधारण चीजों के समान जब चाहे बेंच दिये जाते थे। उनको मारना पीटना और कुटुम्बियों से जुदा कर देना तो एक मामूली बात थी। अमेरिका में इन लोगों की संख्या इतनी बढ़ गई थी कि सन् १८६२ ई० में इनकी संख्या चालीस लाख के करीब पहुच गई थी। इन लोगों को गुलामी से मुक्त करने के लिये टामसपेन, विलियम बिलवर फोर्स आदि कई सज्जनों ने बडा उद्योग किया। कुछ दिनों के पश्चात् गुलामी की प्रथा के घोर विरोधी महात्मा इब्राहम लिंकन अमेरिका संयुक्त राज्यों के प्रेसीडेंट चुने गये अंत में इन्ही महात्मा लिंकन की कृपा और उनके असीम उद्योग से सन १८६३ ई० में उन लोगों को स्वतंत्रता मिली और वे अमेरिका निवासी अन्य लोगों के समान मनुष्य समझे जाने लगे।

इन्हीं स्वतत्रता प्राप्त नीग्रो जाति के एक गरीब व्यक्ति के घर बुकर टी० वाशिंगटन का जन्म सन १८५८ या ५९ में हुआ था। जिस समय अमेरिका के गुलाम स्वतंत्र किये गये थे। उस समय वाशिंगटन की उम्र तीन चार वर्ष से अधिक न थी। उसके माता पिता माल्डन नामक ग्राम के नमक की खानि पर काम करते थे। बालक वाशिंगटन को भी वहीं रहना पड़ता था और थोडा बहुत जो कुछ उससे बनता था काम करना पड़ता था। उसकी इच्छा पढ़ने लिखने की थी परन्तु उसके माता पिता उसे काम में लगा कर उससे चार पैसा पाने की इच्छा रखते थे। ऐसी हालत में पढ़ना उसके

लिये एक तरह से असम्भव था। इसी समय उस गांव के समीप निग्रोजाति के बालकों के लिये एक पाठशाला खोली गई। बालक बुकर दिन भर तो माता पिता के साथ खानिपर काम करता था और रात के समय उस पाठशाला में जाकर पढ़ता था। धीरे धीरे उसकी विद्याभिरुचि और भी बढ़ गई और वह सन् १८७२ ई० में हैम्पटन नगर के नार्मल स्कूल में जाकर पढ़ने लगा। उस स्कूल के संस्थापक आर्मस्ट्रांग बड़े परोपकारी थे। बहुतेरे अनाथ, गरीब और असमर्थ नीग्रो बालक उनके वात्सल्य से उस स्कूल में शिक्षा पाते थे। वाशिंगटन भी उनकी कृपा से तीन चार वर्ष में ग्रेज्युएट हो गया। इस स्कूल में उसे जो शिक्षा दी गई थी उसका सार यह था कि—

१—पुस्तकों के द्वारा सीखी हुई विद्या से, वह विद्या विशेष उपयोगी होती है जो सत्पुरुषों की सत्संगति से प्राप्त होती है।

२—शिक्षा का मुख्य उद्देश्य परोपकार करना ही है। मनुष्य की उन्नति केवल मानसिक उन्नति करने से ही नहीं होती बरन उसके साथ शारीरिक श्रम की भी बड़ी आवश्यकता पड़ती है। आत्म विश्वास और स्वाधीनता ये दोनों अमूल्य रत्न परिश्रम ही से प्राप्त होते है। जो लोग दूसरों को सुखी और उन्नत बनाने में श्रम करते है। उन्हीं को सच्चा सुख प्राप्त होता है और वही भाग्यवान हैं।

३—मन, ज्ञान और कर्म की एकता किये बिना शिक्षा सफल नहीं हो सकती है। शिक्षा और श्रम का बड़ा सम्बन्ध है। जिस शिक्षा से श्रम से अरुचि उत्पन्न हो वह शिक्षा ही नहीं है। और न ऐसी शिक्षा से कोई लाभ हो सकता है।

विद्यार्थी वाशिंगटन को और विद्यार्थियों के समान सुभीता न था। क्योंकि वह गरीब था। कालेज की छुट्टी होने पर इतर विद्यार्थी अपने अपने घर जाने की तैयारी करते थे और वाशिंगटन को शहर में मिहनत मज़दूरी या अन्य किसी काम के खोजने की चिन्ता होती थी। वह छुट्टी के दिनों में नौकरी करके पैसा कमाता था और कालेज खुलने पर विद्याध्ययन करता था। इस तरह कठिन मिहनत के पश्चात् उसने उस कालेज का पठन क्रम पूर्ण किया और वह अच्छे दर्जे में पास हुआ।

परीक्षा पास करके वह घर लौट आया और कुछ समय तक एक नाग्रो स्कूल में शिक्षक का काम करता रहा। इसके बाद शिक्षा विषयक ज्ञान बढ़ाने के लिये वह आठ महीने तक वाशिंगटन शहर में रहा और वहाँ उसने अच्छी योग्यता प्राप्त की। इसके पश्चात् हैम्पटन स्कूल में उसने दो वर्ष तक शिक्षा देने का काम किया और इस बार उसकी बहुत ख्याति हुई वह अच्छे शिक्षकों में गिना जाने लगा।

सन १८८१ ई० में अलाबामा रियासत के टस्केजी नामक गांव के निवासियों ने एक नार्मल स्कूल खोलने का विचार किया और इस शाला के लिये हैम्पटन संस्था के अध्यक्ष मि० आर्मस्ट्रांग से एक उपयुक्त शिक्षक मांगा। मि० आर्मस्ट्रांग ने बुकर टी० वाशिंगटन को वहां भेज दिया। वाशिंगटन वहां पहुँचा और उसने वहाँ के लोगों की आर्थिक वा सामाजिक अवस्था की जांच करके एक पुराने मकान में पाठशाला खोल दी। उस समय उस शाला में ३० विद्यार्थी भरती हुए। भारतवर्ष के समान वे लोग भी परिश्रम को बुरा और कामों को ऊंचा नीचा समझते थे। इस लिये उसे अपने नूतन तत्त्वों के अनु-

सार शिक्षा देने में बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उठाना पड़ीं। उस गांव की परिस्थिति के अनुसार उसने वहाँ के विद्यार्थियों को कृषि और एक दो ऐसे धंधों की शिक्षा देने की आवश्यकता समझी कि जिसके द्वारा लोग अपने निर्वाह के लिये रुपया पैदा करने के योग्य हो जावें। वह ऐसी शिक्षा देने का पक्षपाती था कि जिससे विद्यार्थियों का परिश्रम, व्यवसाय और मितव्ययिता से प्रेम उत्पन्न हो जाय, उनकी बुद्धि धर्म और नीति की ओर झुके और विद्याध्ययन कर चुकने पर वे स्वतंत्र रीति से उद्यम करके अपने जीवन को सुखमय बना सकें। परन्तु ऐसी शिक्षा देने के लिये वाशिंगटन के पास एक भी साधन न था। परन्तु वह निराश नहीं हुआ और वह बड़े उत्साह के साथ प्रयत्न करने लगा। प्रति सप्ताह विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने लगी और पहले महीने के अंत में वह ५० तक पहुंच गई। यह मिश्रित शाला थी इसमें लड़कों के साथ लड़कियाँ भी पढ़ती थी। इसी गांव के समीप एक खेत बिकाऊ था, वह जगह इसे बहुत पसंद आई और उसने ५००) रुपया कर्ज लेकर उसे खरीद लिया। अब पाठशाला वहाँ से उठकर इसी खेत की झोपड़ियों में भरने लगी। पहले पहल वहां के विद्यार्थी शारीरिक परिश्रम करने में संकोच करते थे, परन्तु जब उन्होंने अपने शिक्षक वाशिंगटन को हाथ में कुदाली, फावड़ा लेकर काम करते देखा, तब वे लोग भी बड़े उत्साह से काम करने लगे

शाला के लिये जमीन तो ले ली, परन्तु अब इमारत बनाने के लिये फिर रुपयों की आवश्यकता हुई। उन लोगों ने गांव गांव में फिर कर रुपया संग्रह करना प्रारम्भ किया। बड़े प्रयत्न और सतत परिश्रम से उनके इस काम में सफ-

लता प्राप्त हुई और इमारत बनाने के लिये रुपया इकट्ठा हो गया। धन इकट्ठा करने के विषय में वाशिंगटन ने अपना निम्न लिखित अनुभव प्रकट किया है।

१- तुम अपने कार्य के विषय में अनेक लोगों और संस्थाओं को अपना सारा हाल सुनाओ। जो कुछ कहना हो वह साफ़ साफ़ शब्दों में इस तरह कहो जिससे वे तुम्हारे कार्य के गौरव को समझ सकें।

२ परिणाम के विषय में निश्चिन्त रहो।

३—इस बात पर विश्वास रक्खो कि संस्था का अंतरंग जितना स्वच्छ, पवित्र और उपयुक्त होगा उसे उतना ही अधिक लोकाश्रय मिलेगा।

४ गरीब और अमीर दोनों से सहायता मांगो। सच्ची सहानुभूति रखनेवाले सेकड़ों दाताओं के छोटे छोटे दानों पर ही परोपकार की बड़ी बड़ी संस्थाएं और बड़े बड़े काम चलते हैं।

५ चन्दा वसूल करते समय दाताओं की सहानुभूति, सहायता और उपदेश प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

टास्केजी सस्था की जो आश्चर्यजनक उन्नति हुई है वह बुकर टी० वाशिंगटन के स्वावलम्बन और सतत परिश्रम का फल है। सन १८८१ में जब यह सस्था स्थापित की गई थी उस समय उसके पास १०० एकड़ ज़मीन, तीन साधारण इमारतें, १ शिक्षक और ३० विद्यार्थियों के सिवाय और कुछ न था। परन्तु अब उस सस्था ने कल्पनातीत उन्नति की है। सन् १९१२ ई० में उसकी १०६ इमारतें थीं, जिनमें १६४५ विद्यार्थी शिक्षा पाते है। उस संस्था के द्वारा साधारण शिक्षा

के सिवा भिन्न भिन्न ४० धंधों की शिक्षा दी जाती है, शिक्षकों की संख्या १८० तक पहुंच गई है। २३५० एकड़ ज़मीन और १५०० जानवर हैं। इसमें से १००० एकड ज़मीन में विद्यार्थियों के श्रम से खेती होती है। खेती में काम आने वाले सामान और यंत्रों की क़ीमत ३८,८५,६३६ रुपया है। संस्था की वार्षिक आमदनी ४,००,००० रुपया है, यह रक़म भिक्षा मांग कर इकट्ठी की जाती है। ६,४५,००० रुपया कोष में जमा हैं। सब मिल कर संस्था की जायदाद एक करोड से अधिक है। इसका प्रबन्ध पंचों द्वारा चलता है। इस संस्था से शिक्षा पाकर लगभग ३००० आदमी दक्षिण अमेरिका के भिन्न भिन्न स्थानों मे स्वतन्त्र रीति से काम करते हैं। और वे अपने उद्योग से अपनी जाति के हजारों लोगों को अपने समान बना रहे हैं।

यह संस्था वाशिंगटन के अतुल परिश्रम का फल है। आप इस संस्था के व्यय निर्वाहार्थ नगर नगर, गांव गांव में फिर कर धन इकट्ठा करते हैं और पाठशाला में शिक्षक का काम भी करते हैं। आप की शिक्षा का यह ध्येय है -

१—संसार में जिन २ वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है उन सब का बनाना विद्यार्थियों को (वे चाहे लड़के हों या लड़की) सिखाना चाहिये।

२—योग्य शिक्षा, ज्ञान और नैतिक गुणों से संस्था के ग्रेज्युएटों को इस योग्य बना देना चाहिये कि वे आगे संसार में सुख पूर्वक अपना उदर निर्वाह करने के योग्य हो जावें।

३—परिश्रम का सौन्दर्य्य और महत्व विद्यार्थियों के मन में इस तरह भर देना चाहिये कि वे परिश्रम से मुख छिपाने की अपेक्षा उससे प्रेम करने लगें।

४—अंत में हमारे समाज की कुछ सेवा हमारे हाथों से हो ऐसी उत्कट इच्छा विद्यार्थियों के मन में उत्पन्न कराना चाहिये।

वाशिंगटन ने अपने आत्मचरित में अपनी सफलता का रहस्य इस तरह लिखा है।

१ ईश्वर के राज्य में किसी व्यक्ति या संस्था की सफलता की एक ही कसौटी है। वह यह कि प्रत्येक प्रयत्न सत्कार्य करने की प्रेरणा से प्रेरित होकर करना चाहिये।

२—जिस जगह हम रहते हों वहाँ के निवासियों की शारीरिक, मानसिक नैतिक और आर्थिक उन्नति करने का यत्न हमें करना चाहिये। हमारे लिये यही सब से बड़ी बात है।

३—सत्कार्य करने की इच्छा से प्रयत्न करते समय किसी व्यक्ति, समाज या जाति की निन्दा न करना चाहिये और न उनसे द्वेष ही रखना चाहिये। जो काम भ्रातृ भाव, बन्धु-प्रेम और आत्मीयता से किया जाता है वही सफल और सब के लिये उपयोगी होता है।

४—किसी काम के करने में आत्म-विश्वास और स्वाधीनभाव को न भूलना चाहिये। यदि कुछ प्रयत्न निष्फल हो जावें, तो भी निराश न होना चाहिये। अपनी भूलों को विचारपूर्वक दूर करते हुए बार बार प्रयत्न करना चाहिये।

वाशिंगटन यह जानने के लिये उत्सुक रहते हैं कि इस संस्था के विषय में किसकी क्या राय है। ऐसा करने से उसके दोष दूर करने में उन्हें बहुत सहायता मिलती है। वाशिंगटन की स्त्री भी उनके काम में मदद देने के लिये भरपूर प्रयत्न करती है। वाशिंगटन का विश्वास है कि योग्यता या श्रेष्ठता किसी भी जाति या वर्ण के मनुष्य में हो

वह प्रकट हुए बिना नहीं रहती है। इसी तरह गुणों की परीक्षा और चाह भी अवश्य होती है।

अमेरिका में बुकर टी० वाशिंगटन का योग्य आदर हो रहा है। वहां के लोग सद्गुणी और परोपकारी लोगों का आदर करना जानते हैं। एक विश्वविद्यालय ने उन्हें 'मास्टर आफ आर्ट्स' की पदवी दी है। अमेरिका के प्रेसीडेंट भी उनकी इस संस्था को देखने के लिये आये थे। उन्होंने इसका निरीक्षण करके कहा "यह संस्था अनुकरणीय है। इस की ख्याति इस देश में ही नहीं वरन और और देशों में भी हो रही है। इस संस्था के संचालक मि० वाशिंगटन उत्तम शिक्षक, उत्तम व्याख्याता, और सच्चे परोपकारी हैं। उनके इन्हीं सद्गुणों से इस संस्था की इतनी उन्नति हुई है। हम उनका हृदय से सम्मान करते हैं।"

सोचने की बात है कि जिस आदमी का जन्म दासत्व में हुआ, जिस को अपने माता पिता और पूर्वजों का कुछ भी हाल मालूम नहीं, जिस को अपनी बाल्यावस्था में स्वतः मजदूरी करके पेट भरना पड़ता था—वही अपने आत्मबल और परिश्रम के कारण कितने ऊंचे पद पर पहुंच गया। वाशिंगटन के जीवनचरित्र से यह जाना जाता है कि मनुष्य प्रतिकूल अवस्था में भी अपनी जाति, समाज और देश की कैसी सेवा कर सकता है।

जो लोग शिक्षा द्वारा अपने समाज की सेवा करना चाहते हैं। यदि वे डाक्टर बुकर टी० वाशिंगटन और उनकी टस्केजी-संस्था का अनुकरण करें तो उनका प्रयत्न भली भांति सफल हो सकता है। यद्यपि भारतवर्ष में अमेरिका के समान कोई जाति दासत्व के कीचड़ में नहीं फंसी है। तथापि यहां भी अस्पृश्य जाति के कई करोड़ आदमी

सामाजिक दासत्व भोग रहे हैं। न उसकी शिक्षा का प्रबन्ध है और न उनकी उन्नति का कोई द्वारही खुला है। लोग उन का स्पर्श करने में भी पाप समझते हैं। क्या इस देश में भी उन लोगों के उद्धार के लिये वाशिंगटन के समान कोई महात्मा उत्पन्न होगा ?*

गारफील्ड।

अमेरिका में गारफील्ड नामक एक बुद्धिमान् पुरुष हो गया है। उसका जन्म एक गरीब घर में हुआ था। उस ने मिहनत मजदूरी करके अपने पढ़ने का खर्च चलाया और अपने निरन्तर उद्योग के फल से अपनी आशातीत उन्नति की। उस के घर में इतना पैसा नहीं था कि वह उसके द्वारा अपना निर्वाह करके पाठशाला में पढ़ सके। एक दिन उसने एक पाठशाला के अध्यापक के पास जाकर कहा—"महाशय! मेरी इच्छा आप की पाठशाला में रह कर शिक्षा पाने की है, परन्तु मैं बिलकुल गरीब हूं, किसी तरह की सहायता बिना पढ़ नहीं सकता हूं। हां, पर एक बात है कि मैं अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्येक काम करने को तैयार हूं। मैं स्कूल को झाड़ने बुहारने और घंटा बजाने का काम भलीभांति कर सकता हूं। या ऐसा ही और कोई काम जो आप बतलावेंगे, मैं करने को राजी हूं। काम के बदले मुझे केवल खाने भर को मिला जाया करे तो मैं उसे करने को तैयार हूं।"

* जन हितैषी के एक लेख के आधार से जो लोग वाशिंगटन के आत्म-चरित को पढ़ना चाहें वे हमारे कार्यालय से आत्मोद्धार नामक पुस्तक मंगा कर पढ़ें मूल्य १)

अध्यापक ने कहा—हे बालक ! हम कैसे जाने कि तुम इस काम को हमारी इच्छानुसार कर सकोगे ?

गारफील्ड ने नम्रता पूर्वक कहा—महाशय ! आप की बताई हुई रीति के अनुसार मैं काम करने की कोशिश करूंगा। आप एक हफ्ता मुझसे काम करा देखिये यदि मैं इतने समय में आप की इच्छानुसार काम न करूं, तो तुरत निकाल दिया जाऊं। आप मेरी परीक्षा कर देखिये। मुझे पढ़ने की बड़ी अभिलाषा है।

गारफील्ड की बातों से उत्साह टपक रहा था। अध्यापक ने उसे एक होनहार विद्यार्थी समझ कर स्कूल में झाड़ने बुहारने और घंटा बजाने का काम सौंप दिया। और उसका विद्यार्थियों की श्रेणी में नाम लिख लिया। वह बालक नित्य बड़े सबेरे उठ कर ५ बजे घंटा बजाता था। घंटा बजाने में कभी १ मिनट की जल्दी व देरी नहीं होती थी। इसके बाद वह स्कूल को साफ करता था। जिस दिन से गारफील्ड ने स्कूल के साफ़ करने का काम अपने हाथ में लिया उस दिन से स्कूल बहुत साफ रहता था। कूड़ा कचरा कहीं ढूंढे भी न मिलता था। उसका सिद्धान्त था कि जो काम किया जाय वह इस सफ़ाई के साथ किया जाय कि जिससे उससे अच्छा काम और कोई न कर सके। यदि रास्ते में झाड़ू देना हो तो वह इस तरह झाड़ कर साफ की जाय कि जिससे वैसा साफ़ रास्ता दूसरा न दिखाई दे। सारांश यह कि गारफील्ड को जो काम सौंपा गया था उसे उसने बहुत अच्छी तरह से किया। अध्यापक महाशय उसके काम से बहुत प्रसन्न रहा करते थे। वह कहा करता था कि काम ऊंचा नीचा नहीं होता है और न किसी काम के करने से इज्जत ही घटती है, बरन

किसी काम को चाहे वह छोटा हो या बड़ा, उत्तमता पूर्वक न करने में ही बदनामी होती है।

वह मधुरभाषी और नम्र स्वभाव का था। वह प्रत्येक विद्यार्थी से अत्यंत नम्रता पूर्वक हँस कर बोलता था। इस कारण उस शाला के सब विद्यार्थी और पाठकगण उस पर बहुत प्यार करते थे। वह दूसरों को प्रसन्न करने के लिये कभी कभी मधुर हँसी दिल्लगी भी किया करता था परन्तु उस की बातें किसी के दिल दुखाने वाली न होती थीं। यद्यपि गारफील्ड एक छोटा काम करता था परन्तु तो भी लोग उस से प्रेम करते थे। भारतवर्ष में हाथ से काम करना जैसा बुरा समझा जाता है वैसा अमेरिका में नहीं समझा जाता। वहां के निवासी काम को देवता के समान समझते हैं। वहां मनुष्य के भले बुरे की पहिचान उस के आचरण से की जाती है, न कि काम से। वहां सदाचारी चमार भी गौरव मान पाता है। बड़े २ अमीरों के लड़के लकड़ी काटने, बोझा ढोने और इसी तरह और भी छोटे छोटे कामों के करने में अपनी मानहानि नहीं समझते हैं। विद्यार्थी छुट्टी के दिनों में सिन्नल मजदूरी कर के रुपया पैदा करते हैं और कालेजों के खुलने पर उन्हीं रुपयों से अपना निर्वाह करके पढ़ते हैं। वहां के लड़के अपने बाप की कमाई के भरोसे रहना अच्छा नहीं समझते हैं। बड़े २ अमीरों के लड़के अखबार वा छोटी २ वस्तुएं सड़कों पर बेच कर अपना पाकेट खर्च चलाते हैं। परन्तु यहां का कुछ और ही हाल है—हम लोगों को भीख मांगने में तो कुछ शरम नहीं लगती, पर काम करने में लगती है। कई लोग भीख में मिले एक पैसे को परिश्रम से पैदा किये हुए रुपये से बढ़ कर समझते हैं। हाय, कैसी उलटी समझ है।

गारफील्ड अपने उत्तम स्वभाव, परिश्रम और अच्छी चाल-चलन से सब का प्यारा बन गया। उस स्कूल में एक बड़ा पुस्तकालय था। गारफील्ड अपने समय को बचा कर पुस्तकों के पढ़ने में लगाता था। और उन में से उत्तम उत्तम बातों को छांट कर पुस्तक में लिख लेता था।

गारफील्ड बड़ा न्याय प्रिय था। उसे गेंद खेलने का अधिक शौक था। उसे जिस काम में आनन्द प्राप्त होता था वह उस कार्य में और लोगों को भी शामिल किया करता था। एक दिन जब वह गेंद खेल रहा था, उस समय कई छोटे छोटे बालकों ने भी उस के साथ खेलने की इच्छा प्रकट की। परन्तु उस के साथी इन छोटे छोटे बालकों को अपने साथ मिला कर खेल फीका नहीं करना चाहते थे। परन्तु उसे अपने साथियों का यह बर्ताव अच्छा नहीं लगा। उस ने कहा "हे भाइयो! हम ऐसा खेल खेलना पसन्द नहीं करते, जिस में केवल हम को ही आनन्द मिले, और हमारे दूसरे निर्बल भाई उस आनन्द से विमुख रहें।" उस के समझाने से सब लड़के प्रसन्न हुए और वे सब के साथ खेलने लगे।

कुछ दिनों के पश्चात् उस को स्कूल में झाड़ने बुहारने और घंटा बजाने के काम के बदले एक अध्यापक के नीचे छोटे कक्षा के एक विषय पढ़ाने का काम दिया गया। वह इस काम को खूब जी लगा कर किया करता था। स्कूलटाइम के सिवा अन्य समय में वह बढ़ई का काम किया करता था। लोग बहुधा उस के घर पर लकड़ी डाल जाते और जैसा काम कराना होता था कह जाते थे। गारफील्ड ठीक समय पर उस काम को पूरा कर के भिजवा देता था। इस तरह धीरे धीरे उस की आय बढ़ने लगी और वह इस तरह रुपया पैदा

करके अपनी माता और भाई को भी यथेष्ट सहायता देने लगा। इधर थोड़े दिनों में ही उस की अच्छे शिक्षकों में गणना होने लगी। धीरे धीरे उस ने अपनी विद्या भी खूब बढ़ा ली।

गारफील्ड में एक और गुण था और उसी गुण के कारण उस की देश भर में प्रसिद्धि हुई। वह व्याख्यान देने में बहुत निपुण था। उस का व्याख्यान बहुत सरल, मधुर और अर्थपूर्ण होता था। उस के विचार भी बहुत अच्छे और लोगों पर प्रभाव डालने वाले थे। उस के भाषण में मधुरता गम्भीरता और आकर्षण शक्ति की प्रचुरता रहती थी। उस समय अमेरिका के संयुक्त राज्यों में दास-विक्रय पर बड़ा वादानुवाद चल रहा था। वहां के धनी लोग निग्रो जाति के लोगों को गुलाम बनाये हुए थे और उन पर मनमाना अत्याचार करते थे। परन्तु गारफील्ड गुलामी की प्रथा को बहुत बुरा समझता था। वह दास विक्रय का घोर विरोधी था। समय समय पर व्याख्यानों द्वारा वह अपने मत की पुष्टि किया करता था।

पाठशाला में उस का शिक्षण पूरा होते ही उस ने आगे पढ़ने का विचार किया। परन्तु वहाँ कालेजों में शिक्षा पाने के लिये बहुत खर्च की आवश्यकता पड़ती है। अमेरिका में साधारण स्थान में रह कर शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों को कम से कम चार सौ रुपया माहवारी लगता है। अतः उस ने दो तीन कालेजों के प्रधान अध्यापकों को प्रार्थना पत्र भेज कर विनय की कि "मैं गरीब व्यक्ति हूं, कालेजों में पढ़ने योग्य मेरे पास खर्चा नहीं है, यदि मुझे सहायता मिले तो मैं आप के कालेज में पढ़ना चाहता हूं।" इस समय गारफील्ड की प्रशंसा प्रायः दूर दूर तक फैल गई थी, अतः ऐसे

होनहार विद्यार्थी को कौन न चाहेगा ? सभी ने लिखा कि तुम आ सकते हो। अंत में उस ने विलियम कालेज को जाना अच्छा समझा। जब वह वहां जाने लगा तो उस के भाई ने पूछा कि तुम कालेज में पढ़ने के लिये खर्चा कहाँ से लाओगे ? उस ने कहा—"जाड़े के मौसम में किसी तरह का परिश्रम कर के अपने खर्च योग्य धन पैदा कर लिया करूंगा।" अमेरिका में इस तरह परिश्रम कर के हजारों विद्यार्थी कालेजों में पढ़ते हैं। श्रीयुत सत्यदेव आदि अपने देश के निवासी भी इसी तरह वहां पढ़ आये हैं।

गारफील्ड ने इस तरह दो वर्ष तक कालेज में शिक्षा पाई। और प्रशंसा के साथ डिग्री प्राप्त की। कालेज से निकल कर उस ने शिक्षक का काम स्वीकार किया। जिस समय वह स्कूल की पढ़ाई पूर्ण कर के कालेज को जाने लगा था उस समय उस स्कूल के शिक्षक ने इस से कहा था कि "जब तुम कालेज की पढ़ाई पूर्ण कर चुको तब इसी स्कूल में आकर शिक्षक का काम करना।" इस कारण कालेज छोड़ने पर कुछ दिनों तक उस ने इसी स्कूल में शिक्षक का काम किया।

जनरल गारफील्ड अपने सद्गुणों से बढ़ते बढ़ते अमेरिका के संयुक्त राज्यों का प्रेसीडेन्ट अर्थात् प्रधान शासक हो गया था। पाठको ! ज़रा विचारने का स्थल है कि एक ग़रीब के लड़के ने मिहनत मजदूरी करके कालेज में शिक्षा पाई और अपनी कठिन मिहनत, विलक्षण बुद्धि तथा सदाचार के कारण इतनी उन्नति प्राप्त की कि वह वहां का बादशाह हो गया !

जहाँ तक हो सके हमें अपने निर्वाह का भार कभी दूसरों पर न डालना चाहिये। यह काम छोटा है, वह हमारी योग्यता

का नहीं है, अमुक काम के करने से हमारी मानहानि होगी। इन विचारों को एकदम त्याग कर काम करने के महत्व को समझना चाहिये। गारफील्ड सरीखे कर्मवीर पुरुषों के जीवन-चरितों को पढ कर उन के सद्गुणों के अनुसरण करने से हम भी आश्चर्यजनक उन्नति कर सकते हैं।

महज्जनों के चरित्र पाठ कर, लख उन के आचरण पुनीत।
बनो विनम्र उदार हृदय तुम, सीखो उन की भव्य सुनीति ॥
जिस पथ का अवलम्बन कर के, हुए महज्जन स्मरणीय।
उसी मार्ग को लक्ष्य बना कर, तुम भी हो सकते वरणीय ॥

महात्मा इब्राहम लिंकन।

"If Slavery is not wrong, nothing is wrong!"*
Abraham Lincoln

महात्मा इब्राहम लिंकन का जन्म सन् १८०६ ई० में गरीब माता पिता के घर अमेरिका देश में हुआ 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इस उक्ति के अनुसार इन की योग्यता छुटपन से ही प्रगट होने लगी थी। तीक्ष्ण बुद्धि और परिश्रमी स्वभाव के कारण इन्हों ने शीघ्र ही पढ़ने लिखने में निपुणता प्राप्त कर ली। बड़े होने पर उन की योग्यता सावधानी तथा मिहनती प्रकृति को देख कर ओफट नामक एक दूकानदार ने उन्हें अपना सहकारी बना कर न्यूआरलीन्स की दुकान पर

---

* अगर गुलामी पाप नहीं है तो पाप फिर कुछ है ही नहीं।
—इब्राहम लिंकन।

रक्खा। उस स्थान पर पहुंच कर उन्हों ने एक बड़ा भयंकर तथा हृदय द्रावक-दृश्य देखा। उस नगर में नीग्रो गुलामों का एक बड़ा बाज़ार लगता था। झुंड के झुंड गुलाम बेड़ी पहिना कर बेचने के लिये बाज़ार में लाये जाते थे। वे बेचारे विवश हो कर पशुओं के समान अपने स्वामियों के साथ इस तरह चले जाते थे, जैसे यहां के किसान लोगों के द्वारा बेचे हुए गाय, बैल आदि पशु कसाइयों के साथ जाते हैं। उन के दुःख का ठिकाना न था, स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बियों से मिल कर रहना उन के लिये असम्भव था। बात की बात में चाबुकों की मार से बेचारों की पीठ से रक्त के फव्वारे उड़ाये जाते थे! इस भयंकर दृश्य को देख कोई सहृदय मनुष्य दुखी हुए बिना नहीं रह सकता है। इस रोंगटे खड़े करने वाले राक्षसी अत्याचार को देख कर महात्मा लिंकन के हृदय पर गहरी चोट लगी और उन्हों ने जब तक उन लोगों के इस दुख को दूर नहीं कर दिया, तब तक उस चोट ने उन्हें एक दिन भी सुख की नींद नहीं सोने दिया। उस दृश्य को देख कर वे उस समय अवाक हो कर रह गये-मुँह से एक शब्द भी न निकला। परन्तु उस दिन से वे उन लोगों को गुलामी से छुड़ाने के लिये सदैव चिन्तित रहने लगे।

इस समय अमेरिका के कुछ दयालु लोगों का ध्यान गुलामों के दुखों की ओर आकर्षित हो चुका था और वे सभा समाजों तथा समाचार पत्रों द्वारा उन के उद्धार का प्रयत्न भी किया करते थे। निदान इस आन्दोलन के प्रभाव से उस देश में दो दल हो गये। उत्तर के राज्य गुलामों को छोड़ देना चाहते थे परन्तु दक्षिण के राज्य इस के विरोधी थे। इसी समय अर्थात् सन् १८५६ में गुलामी के घोर विरोधी महात्मा इब्राहम लिंकन अमेरिका संयुक्त राज्यों के प्रेसीडेन्ट चुने गये।

महात्मा लिंकन ने इस बात की प्राणपन से चेष्टा की, कि रक्त-पात हुए बिना गुलामों को स्वतंत्रता मिल जाय, परन्तु उन की यह इच्छा पूर्ण न हुई। यह झगड़ा धीरे २ जटिल रूप धारण करता गया और सन् १८६० ई० में दक्षिण और उत्तर के राज्यों में Civil war युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध कई वर्षों तक चला। सन् १८६२ के अप्रेल मास में महात्मा लिंकन ने गुलामी बंद करने का क़ानून पास कर दिया। इस समय घोर युद्ध चल रहा था। धीरे धीरे विपक्ष का बल घटने लगा। सन् १८६२ ई० के सितम्बर मास में प्रेसीडेन्ट लिंकन ने यह जाहिरनामा निकाला कि "प्रथम जनवरी सन् १८६३ से गुलाम लोगों को स्वतंत्रता दी जावेगी। विपक्ष के जो लोग इस कानून के पाबंद हो कर हथियार रख देंगे—वे क्षमा पात्र समझे जावेंगे। यद्यपि युद्ध बंद नहीं हुआ तो भी १ जनवरी सन् १८६३ को दास्य-विमोचन की घोषणा कर दी गई। निदान ९ वीं अप्रैल सन् १८६३ ई० को विपक्षियों के सरदार जनरल ली ने महात्मा लिंकन की शरण ली और युद्ध बंद हो गया।

लाखों आदमियों की जान और करोड़ों रुपयों का नुक़सान होने के पश्चात् महात्मा लिंकन की कृपा से ४० लाख गुलामों को स्वतंत्रता मिल गई और उस दिन से वे मनुष्य समझे जाने लगे। दास्य-पंक से युक्त हुए नीग्रो लोग अपने उद्धारक को देवता के समान पूजनीय समझने लगे।

परन्तु काल की गति बड़ी विचित्र है। जिस समय महात्मा लिंकन अपने उद्योग में सफलता प्राप्त कर के दोनों दलों में मेल बढ़ाने की चेष्टा कर रहे थे उसी समय अर्थात् १४ वीं अप्रैल सन् १८६५ ई० को एक हत्यारे ने गोली मार कर उन

का प्राण ले लिया ! परन्तु उस समय महात्मा लिंकन अपने जीवन का सब से बड़ा कार्य (दास्य-मोचन) कर चुके थे इस लिये उन्हों ने सुख पूर्वक अमर लोक की यात्रा की ।

मास्टर उडरो विलसन ।

बहुधा देखा गया है कि संसार में जितने महापुरुष और उन्नति शील-व्यक्ति हुए हैं, उन सब ने साधारण स्थिति के माता पिता के घर जन्म ग्रहण किया है। वे छुटपन से ही परिश्रमी और विद्या-प्रेमी हुआ करते हैं। अमीरों के घर पैदा होकर उच्चतम योग्यता प्राप्त करने वाले दृष्टान्त शायद क्वचित ही मिलें, परन्तु ग़रीबी में पैदा होकर दृढ़परिश्रम और सतत् उद्योग के बल से अपनी आशातीत उन्नति करने वाले सहस्रों उदाहरण इतिहास में भरे पड़े हैं। अमेरिका के एक ग़रीब घराने में जन्म लेकर अपनी उच्चतम योग्यता के कारण जिस तरह जनरल गारफील्ड ने वहाँ के सभापति अर्थात् प्रधान शासक का पद पाया था, उसी तरह हमारे चरित्रनायक ने भी सन १९१३ ई० में वही पद पाया। मास्टर उडरो विलसन अपनी उन्नति करते करते साधारण स्थिति से उच्चपद पर पहुचे—वे वहां के राजा बन गये! अतएव उन के जीवन की कुछ बातें नीचे लिखी जाती हैं।

आप का जन्म वर्जीनियां रियासत के अंतर्गत स्टंटन नामक नगर में सन १८५८ ई० में हुआ। छुटपन से ही आपका ध्यान पढ़ने लिखने की ओर खूब लगता था। विद्याभ्यास करते २ सन १८७९ ई० में आप ग्रज्युएट हुए और फिर कानूनी

परीक्षा पास कर के बैरिस्टरी करने लगे। सन १८६० ई० में प्रिंस्टन विश्वविद्यालय ने कानून और राजनीति की शिक्षा देने के लिये प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया। आप की उत्तम शिक्षण प्रणाली के प्रभाव से विद्यार्थियों में एक नया जीवन आने लगा। वे निर्भय, सदाचारी और निस्पृह होने लगे। इस कारण थोड़े ही समय के भीतर आप की गणना उत्तमोत्तम शिक्षकों में होने लगी।

सन १११० ई० में न्यूजर्सी गवर्नरी के लोगों ने मास्टर उडरो विलसन को अपने प्रांत का गवर्नर बनाने के लिये उद्योग किया, उन का उद्योग सफल हुआ और वे बहुमत से वहां के गवर्नर बना दिये गये। आप पक्षपात रहित होकर अपने सिद्धान्तो के अनुसार लोकसेवा का कार्य करने लगे। इस काम को सुचारु रूप से चलाने के कारण आप का प्रभाव लोगों पर बहुत जम गया। न्यूजर्सी गवर्नरी में पहले अमीरों का बडा ज़ोर था— वे लोग जो चाहते थे वही होता था। बेचारे साधारण लोगों के स्वार्थों का अमीर लोग कभी ध्यान न रखते थे। मास्टर विलसन ने इस पक्षपात को धीरे २ दूर कर दिया और न्यूजर्सी प्रांत में वास्तविक प्रजासत्तात्मक राज्य की स्थापना की। कई लोग ऐसे होते हैं कि वे जिन बातों का उपदेश दिया करते हैं, मौका पडने पर उन सिद्धान्तों के अनुसार काम करना वे नहीं जानते। ऐसे उपदेशकों का लोगों पर प्रभाव भी कम पड़ता है। परन्तु हमारे चरित्र नायक ऐसे नहीं थे, वे जिन बातों की शिक्षा अध्यापकी करते समय विद्यार्थियों को दिया करते थे उन्हें अवसर मिलते ही प्रत्यक्ष करके दिखाने लगे।

न्यूजर्सी गवर्नरी के सुप्रबन्ध से मास्टर विलसन का प्रभाव देश भर में फैल गया। निदान सन १६१२ ई० के मार्च

महीने में अमेरिका संयुक्तराज्य के लोगों ने उन्हें अपने देश का सात वर्ष के लिये राजा बनाया। सच है, अमेरिका के लोग गुणग्राही हैं—वे योग्य और बुद्धिमान लोगों का आदर करना जानते हैं। यदि ऐसा न होता तो यहां के प्रतिभाशाली, धनकुबेर ख्यातनामा मिस्टर ट्राफट् और पूर्व प्रसीडेन्ट रूजवेल्ट की प्रतिद्वन्द्विता में विजय पाकर मिस्टर उडरो विलसन कभी प्रेसीडेंट न चुने जाते। अमेरिका के गुण ग्राहिकता का पता इसी से चलता है कि उपरोक्त प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ धन-पति ट्राफट् और पुराने प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट के अपार प्रयत्न करने पर भी वे प्रसिद्ध विद्वान किन्तु धन हीन मास्टर उडरो विलसन के बराबर वोट न पा सके।

अमेरिका सरीखे सुसभ्य और सुधरे राष्ट्र के प्रधान शासक का काम बड़े महत्व और जवाबदारी का है। अमेरिका संयुक्तराज्य में सब मिलकर ४८ रियासतें हैं उन का क्षेत्र-फल ३६ लाख वर्ग मील से अधिक है। यहां की आमदनी भी दुनियां के प्रायः सभी देशों से बढ़ी चढ़ी है। इतने बड़े राज्य की बागडोर को अपने हाथ में लेकर मास्टर उडरो विलसन बड़ी योग्यता के साथ उस का सञ्चालन कर रहे हैं।

योग्य शासकों में जो गुण होना चाहिये वे सब आप में दिखाई देते हैं। आप योग्य विद्वान् और प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हैं। पक्षपात और किसी की शिफारिस आप को पसंद नहीं है। आप बहुत सादी चाल से रहते हैं, सब तरह के व्यसनों से आप बचे हुए हैं। शराब को आप छूते भी नहीं हैं। आप की नीति उदार और प्रजाहितैषिणी है।

आदर्श-चरितावली।

द्वितीय परिच्छेद।

भारतीय ऐतिहासिक आदर्श-चारित्र।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर।

स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः,
पिबन्ति नाम्भः स्वयमेव नद्यः।
धराधरो वर्षति नात्महेतोः,
परोपकाराय सतां विभूतिः॥

कलकत्ते से करीब ५० मील दूर मेदनीपुर जिले के अन्तर्गत बीरसिंह नामक ग्राम है। इस ग्राम में ठाकुरदास बन्दोपाध्याय नामक एक सज्जन रहते थे। इन पर दरिद्रता देवी की पूर्ण कृपा थी, जिस समय ये छोटे थे तब इन की माता सूत बेच बेच कर अपना निर्वाह करती थीं, ठाकुरदास जब बड़े हुए तब उन से अपनी माता का यह कष्ट न देखा गया और वे नौकरी की खोज में कलकत्ता आये। परन्तु ये पढ़े लिखे नहीं थे, इस कारण बहुत प्रयत्न करने पर नौकरी न पा सके, वहां रह कर इन को भर पेट भोजन मिलना भी कठिन हो गया। अन्त में बड़ी कठिनाई से एक साहूकार की दूकान पर ८) माहवार की नौकरी मिल गई। कलकत्ते सरीखे शहर में इतने स्वल्प

वेतन से केवल उन की ही गुजर न हो सकती थी। परन्तु वे अपनी कुछ चिन्ता न कर के इस वेतन का अधिकांश अपनी माता के पास भेजने लगे। वे स्वतः भूखे रहने की अपत्ता माता को सुखी रखना अपना कर्तव्य समझते थे। महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इन्हीं मातृ-भक्त ठाकुरदास के घर सन् १८२० ईस्वी में जन्म लिया था। इनके माता पिता दरिद्र होने पर भी बड़े ही सच्चरित्र और उदार पुरुष थे। माता पिता के उत्तम गुणों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। बालक ईश्वरचन्द्र क चरित्र पर इन का अच्छा प्रभाव पड़ा। इन की माता बड़ी दयावती थीं। वे किसी को दुखी देख कर उस की सहायता किये बिना नहीं रह सकती थी। उन को ज़ेवर पहिरने का शौक नहीं था। जब उन की आर्थिक अवस्था अच्छी हो गई थी उस समय भी वे कहा करती थी कि—"इन हाथों की शोभा नग जेवर पहिरने से नहीं, बरन भूखों को भोजन खिलाने से है।" इन बातों को वे केवल कह कर ही न रह जाती थीं, बरन अकाल के समय अपने हाथों से सहस्रों भूखों को भोजन बांट कर के उन को सत्यता प्रमाणित करती थीं ऐसी दयामयी माता का पुत्र पर यथोचित् प्रभाव पड़ा।

ईश्वरचन्द्र को पढ़ने लिखने का बड़ा अनुराग था। उन की बुद्धि भी इतनी तेज थी कि उन्हें किसी बात को दुबारा बतलाने की आवश्यकता न पड़ती थी। एक बार जब वे कलकत्ता गये तो रास्ते में मीलों के अंकों को देखकर अंग्रेजी गिनती सीख गये। ईश्वरचन्द्र समय को कभी व्यर्थ न खाते थे। वे रात को भी कम सोते थे। इस तरह कठिन परिश्रम के फल से वे शीघ्र ही अपने सहपाठियों से आगे निकल गये। उन की ऐसी विलक्षण बुद्धि देख कर गुरु महाराज उन की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। एक दिन

उन्हो ने ईश्वरचन्द्र के पिता से कहा था कि ईश्वरचन्द्र एक होनहार बालक दिखाई देता है। यदि आप इस का उच्च शिक्षा का प्रबन्ध करें तो एक दिन वह अद्वितीय विद्वान् हो जावेगा। पुत्र की प्रशंसा सुन कर पिता के आनन्द का ठिकाना न रहा और उन्हों ने गुंजाइश न होने पर ईश्वरचन्द्र को कलकत्ता भेज दिया। जो आठ दश रुपया माहवारी उन्हें मिलते थे उनमें से आधे रुपया पुत्र को भेजकर बाकी रुपयों में अपना निर्वाह करने लगे। जिनको पढ़ने की तीव्र उत्कंठा होती है, वे अनेक कष्टों को सह कर पढ़ लेते हैं। ईश्वरचन्द्र ने कितने कष्ट और परिश्रम के साथ विद्याध्ययन किया है यह सुन कर आश्चर्य होता है। उन्हें चार छः आदमियों की रोटी बनानी पड़ती थी और उस का हिसाब रखना पड़ता था। इतना काम करके भी वे बड़ी उत्तमता के साथ पढ़ते और सब विद्यार्थियों से प्रथम रहते थे। ईश्वरचन्द्र जिस समय संस्कृत कालेज में पढ़ते थे उस समय उन की अवस्था ८ १० वर्ष से अधिक न थी। १६ वर्ष की अवस्था में उन्हों ने संस्कृत के बहुत कुछ काव्य और अलंकारिक ग्रंथ पढ़ डाले थे। इस के पश्चात् उन्हों ने दर्शन और वेदान्त जैसे गहन ग्रंथों का अध्ययन करके उन में अच्छी योग्यता प्राप्त की थी। कालेज के गुणग्राही अध्यापकों ने उन की असाधारण विद्वत्ता देखकर उन्हें 'विद्यासागर' की पदवी से विभूषित किया था।

विद्यासागर की माता पिता पर अगाध श्रद्धा थी। वे अपने भाइयों पर भी बड़ा प्रेम करते थे। जब वे कलकत्ता के संस्कृत कालेज में पढ़ते थे उस समय उन के पिता और दो भाई भी वहीं रहते थे। विद्यासागर प्रत्येक काम अपने हाथ से करते थे प्रति दिन सब के लिये भोजन तैयार करते और सब को उत्तम प्रकार से खिलाते थे। वे चाहते थे कि हमारे

पिता और भाइयों को किसी प्रकार की तकलीफ न होने पावे। अर्थाभाव के कारण जब उन्हें खाने पान की उपयुक्त सामग्री प्राप्त न हो सकती थी, तब वे स्वतः रूखा सूखा भोजन कर के पिता और भाइयों को अच्छा तथा स्वादिष्ट भोजन कराते थे।

'ला कमेटी' की परीक्षा ऊंचे नंबरों में पास करने के कारण एक बार उन्हें त्रिपुरा जिले में जज-पण्डित का पद मिला था। परन्तु उस समय उन की उमर केवल १८ वर्ष की थी। इस कारण उन के पिता ने उन्हें उस स्थान को न जाने दिया। यद्यपि विद्यासागर को वहां जाने की बड़ी लालसा थी परन्तु वे पिता के वचनों को कैसे टाल सकते थे? उन्हें लाचार हो कर उस पद को अस्वीकार करना पड़ा। इसी तरह उन के चरित्र में मातृभक्ति के भी कई उदाहरण मिलते हैं। परन्तु स्थानाभाव से यहां पर उन का वर्णन नहीं लिखा गया है।

विद्यासागर दया के अवतार थे। वे किसी को दुखी नहीं देख सकते थे। उन के जीवनचरित्र में असीम दया के सहस्रों उदाहरण भरे पड़े हैं। जब उन्हें २) माहवार मिलते थे तब भी वे उस में से दान किया करते थे, अपने पास कुछ न बचाते थे। और जब सैकड़ों रुपया मिलने लगे तब भी वे अपने पास कुछ न बचाते थे, सब दे डालते थे। कालेज में पढ़ते समय अर्थाभाव के कारण वे खाने पीने को तंग रहते थे, परन्तु उस समय भी उन्हें थोड़ी बहुत जो छात्रवृत्ति मिलती थी उसी के द्वारा दूसरों की सहायता करते थे। जिन विद्यार्थियों के पास कपड़े न होते थे उन्हें वे कपड़े ले देते थे जिन के पास पुस्तक आदि लिखने पढ़ने का सामान न होता था उसे सामान ले देते थे। यदि कोई सहपाठी बीमार हो

जाता था तो आप अपने हाथों से उस की सेवा करते और आवश्यकता पड़ने पर अपने खर्च से उस की औषधि करते थे। जिसे कोई आश्रय न देता था उसे आप देते थे। जिन रोगियों के पास कोई खड़ा नहीं होता था उन को आप अपने हाथों से स्नान कराते दवा देते और उन के मल मूत्र भरे कपड़ों तक को धो देते थे। एक बार आप पालकी में बैठे हुए कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक ऐसे अनाथ रोगी को देखा जो बहुत कमजोर था और कठिन पीड़ा के मारे तड़फ रहा था। उसे देखते ही इन्हें दया आ गई और आप झट पालकी से उतर पड़े। उस रोगी को पालकी में बिठाकर अपने घर ले आये और उस की दवा दारू और खाने पीने का प्रबन्ध कर दिया। इस प्रकार की दयालुता और लोक-सेवा के उन के सहस्रों उदाहरण मिलते हैं। एक बार पड़ोसी के एक नौकर को हैजा हो गया। उस निर्दयी मालिक ने उस बेचारे को घर से निकाल दिया। बेचारा अनाथ नौकर रास्ते पर पड़ा हुआ तड़फड़ा रहा था। उस की इस शोचनीय दशा को देख विद्यासागर उसे अपने घर उठा लाये और उस का लगातार तीन चार दिन तक सेवा खुशामद और औषधि कर के उसे अच्छा कर दिया।

विद्यासागर ने अपने जीवन को परोपकार के लिये उत्सर्ग कर दिया था। वे घर घर जाकर भूखे, रोगी और निराश्रय लोगों की सहायता किया करते थे। एक बार सन् १८६७ ई० में बंगाल में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। लाखों नर नारी भूख से व्याकुल हो कर फिरने लगे। उस समय दया के अवतार विद्यासागर ने अपना अपार धन व्यय कर के अगणित मनुष्यों के प्राण बचाये। आप ने सरकार का ध्यान इन दीन दुःखी लोगों की ओर आकर्षित करा के सरकार से भी यथेष्ट सहा-

यता दिल ई। उस समय लाखों आदमियों की प्राण रक्षा उन के उद्योग से हुई।

विद्यासागर के नौकर सच्चे दीन दुखियों की खोज में फिरा करते थे। जब उन्हें नौकरों द्वारा किसी दुखिया या रोगी का समाचार मिलता था तो वे उसी समय जाकर उस की द्रव्य औषधि तथा सेवा द्वारा सहायता करते थे। जब उन्हें मालूम होता था कि अमुक व्यक्ति ऋण के भार से दबा है तो वे गुप्त रीति से उस की ओर से रुपया जमा कर देते थे।

एक बार एक ग़रीब ब्राह्मण उन के घर के सामने से रोता हुआ जा रहा था। विद्यासागर ने अपने नौकर के द्वारा जाना कि उस ने अपनी कन्या के विवाह के लिये साहूकार से कर्ज लिया था, अब वह बढ़कर २॥ हज़ार रुपये से अधिक हो गया है। उस के पास एक कौड़ी भी नहीं है। साहूकार ने नालिश की है, अगर वह परसों तक अदालत में रुपया जमा न कर देगा तो उसे जेलखाने जाना पड़ेगा। विद्यासागर ने नौकर के द्वारा उसका पूरा पता पूछ लिया। वे दूसरे ही दिन अदालत गये और उस के नाम से सब रुपया जमा कर आये। दूसरे दिन वह ब्राह्मण जब पेशी पर गया तो उसे यह सुनकर आश्चर्य्य हुआ कि कोई आदमी उस की ओर से रुपया जमा कर गया है। उस ने अपने ऊपर असीम उपकार करने वाले गुप्तदाता का नाम बहुत खोजा परन्तु पता न चला। विद्यासागर के समान दानी आज कहां है?

बँगला के प्रसिद्ध कवि मधुसूदन दत्त फ्रान्स में जाकर रहने के समय जब विपद्ग्रस्त हुए उस समय विद्यासागर ने उन्हें दस हज़ार रुपया देकर आपत्ति से छुड़ाया था। पहिले उन्होंने अपने कई आत्मीय बन्धुओं से सहायता मांगी

परन्तु जब सब तरफ से निराशा हुई तब उन्होंने लाचार होकर अपनी विपद् कहानी विद्यासागर को लिख भेजी। विद्यासागर के पास उस समय इतना रुपया नहीं था परन्तु उन्होंने कर्ज़ लेकर शीघ्र ही विपद् ग्रस्त मधुसूदन की सहायता की। यदि वे उस समय उनकी सहायता न करते तो शायद कविवर मधुसूदन जी की वहीं पर मृत्यु हो जाती और बंगला के प्रसिद्ध काव्य मेघनादवध और व्रजाङ्गना का कोई नाम भी न जानता। संसार में कितने ही लोग निस्वार्थ दान करके प्रातः स्मरणीय हुए हैं परन्तु विद्यासागर के समान ऋण लेकर परोपकार करने वाला शायद ही कोई हो।

विद्यासागर ने संसार का बड़ा हित किया है आप ने कई विद्यालय, अनाथालय और औषधालय स्थापित किये, कितने-ही गरीब अनाश्रितों और विधवाओं की रक्षा की। भूखों को भोजन दिया, वस्त्रहीनों को वस्त्र दिये, दुखियों के दुःख दूर किये साहित्य का उपकार किया, विद्यार्थियों को शिक्षा दिलाई और कई सद्गृहस्थों को गुप्त सहायता कर के उन के जीवन तथा सम्मान की रक्षा की।

मनुष्य निर्धनता में जन्म लेकर अपने आत्मबल और परिश्रम के द्वारा उच्च शिक्षा कैसे प्राप्त कर सकता है, माता पिता की कैसी भक्ति करना चाहिये, गरीब आदमी भी कैसे परोपकार कर सकता है धनवान होने पर मनुष्य कहां तक और कैसे मनुष्य की सेवा कर सकता है इत्यादि शिक्षाएं विद्यासागर के चरित्र से मिलती हैं।

महाराणा प्रतापसिंह ।

इस भारतवर्ष में आज से लगभग चार सौ वर्ष पहले एक छोर से दूसरे छोर तक मुगलों का प्रचंड प्रताप छाया हुआ था। हिमालय से कन्याकुमारी तथा सिन्ध से ब्रह्मदेश तक मुगलों की राज्यपताका फहराती थी। उस समय मुगल घराने के प्रसिद्ध बादशाह अकबर का राजत्व काल था। उसने अपने राज्य को बढ़ाकर उसकी नींव बहुत दृढ़ कर-ली थी। भारतवर्ष और विशेष करके राजपूताने के प्रायः सब राजा लोग एक एक करके उसके आधीन हो गये थे। केवल इतना ही नहीं, बरन कई राजपूत राजाओं ने बादशाह को अपनी कन्याएँ तक देना पड़ी थी। परन्तु उदयपुर वा चित्तौड़ के राजा ने बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। राजपूताने की मेवाड़ भूमि वास्तव में वीर कुल की खानि है। महाराणा प्रतापसिंह ने इसी वीरभूमि में जन्म लिया था। ये उस समय मेवाड़ के राजा थे। अपने पूर्वजों के अनुसार राजस्थान की स्वाधीनता की रक्षा करने के लिये वे सदैव तत्पर रहते थे। इधर अकबर प्रतापसिंह को पराजित करने के लिये चक्र चला रहा था। उस ने कई बार मेवाड़ फ़तह करने के लिये फ़ौजें भेजी, परन्तु वे सफलता प्राप्त नहीं कर सकीं। निदान विक्रम सम्वत् १६३२ के श्रावण मास में अकबर ने बहुत सी सेना अम्बेर के राजा मानसिंह के साथ मेवाड़ विजय करने के लिये भेजी।

इधर मेवाड़ के वीर शिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह ने प्रतिज्ञा की, कि "मैं माता के पवित्र दूध को कभी कलङ्कित न

करूंगा। जब तक जीवन रहेगा, तब तक मेवाड़ की स्वाधीनता के लिये भरपूर प्रयत्न करूंगा।" वे तैयार तो थे ही, उन्होंने प्रसिद्ध हल्दी घाट के मैदान में २२ हज़ार राजपूत वीरों को लेकर प्रस्थान किया और वे मुग़लों के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

हल्दीघाट एक पहाड़ी मार्ग है, उस के उत्तर, पश्चिम और दक्षिण में बड़े ऊंचे ऊंचे पर्वत खड़े है। महाराना ने इसी स्थान पर सेना खड़ी कर के मुग़लों का सामना किया। हल्दी घाट का युद्ध बहुत प्रसिद्ध है। राजपूत वीरों ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई। महाराना प्रतापसिंह तीन चार बार मुग़ल सेना को विदीर्ण करके उस के भीतर घुसे, और राजपूत वीरों ने अपने प्राणों की परवा न करके उतने ही बार उनको मृत्यु-मुख से बाहर निकाला। मुग़ल सेना चारों ओर टिड्डीदल के समान छाई हुई थी, बहुत मार काट करने पर भी वह घट न सकी। हल्दीघाट के रणक्षेत्र में १४ हज़ार राजपूतों के रुधिर से नदियाँ बह निकलीं और अन्त में महाराणा को निराश होकर रणभूमि को छोड़ना पड़ी।

सन् १५७६ ई० के जुलाई मास मे यह युद्ध हुआ। कमलमीर और उदयपुर शत्रु के हाथ पहुँचे। महाराणा प्रतापसिंह अपने परिवार सहित एक वन से दूसरे वन में, एक गुफ़ा से दूसरी गुफ़ा में छिपकर अपनी रक्षा करने लगे। इस तरह लगातार २५ वर्ष तक मेवाड़ की स्वाधीनता के लिये वे वनों वनों फिरते और जंगली फल मूल खाकर अपनी और अपने बाल बच्चों की जीवन रक्षा करते रहे। टाड साहब ने राजस्थान में लिखा है कि—"जिन्होंने कभी राजमहल से बाहर पैर नहीं रक्खा, आज वे राजपरिवार के लोग

जंगलों में पैदल घूमते हैं, कांटों और पत्थरों की ठोकरों से जिन के पैरों से रक्त निकल रहा है। इससे अधिक दुःख और क्या हो सकता है? ऐसी कठोरता और विपत्ति को सहन करना प्रताप ही का काम है, प्रताप मनुष्य कुल में देवता थे"।

इस तरह वर्ष के पश्चात् वर्ष बीतने लगे, परन्तु महाराना के कष्टों का अन्त न आया। प्रति वर्ष नये नये कष्ट और नई नई आपदाएँ एकत्रित होकर उन्हें घेरने लगीं। परन्तु तौ भी वे अपने प्रण पर अटल रहे, उन्होंने मुग़लो की आधीनता स्वीकार नहीं की। प्रतापसिंह के ऐसे असाधारण स्वार्थत्याग और इतनी बडी आपत्ति में धीर भाव को देखकर उनके शत्रु का हृदय भी पिघल गया। दिल्ली के एक प्रधान राजकर्मचारी ने उन की देशहितैषिता पर मोहित हो कर उन के पास एक कविता भेजी थी। उसका आशय यह था कि "पृथ्वी पर कुछ भी स्थिर नहीं है, राज्य और सम्पदा एक न एक दिन न जाने कहां चली जायगी? परन्तु बड़े पुरुषों का धर्म्म कभी लुप्त नहीं होता। प्रतापसिंह ने राज्य और धन को त्याग दिया परन्तु अपना मस्तक नहीं नवाया। हिन्दुस्थान के राजाओं में केवल उन्होंने ही अपने वंश और मान की रक्षा की है।"

इस तरह प्रतापसिंह अपने शत्रु से प्रशंसा पाकर वन वन में घूमते थे। एक दिन उन्होंने पांच बार खाने का सामान इकट्ठा किया, परन्तु मुग़लों के धावे के कारण पाँचों बार उन को अपने स्त्री पुत्रों सहित उसे छोड़ कर भागना पडा। एक दिन महारानी ने एक तरह के घास के बीजों को इकट्ठा कर के उन की रोटियाँ बनाई। रोटी थोडी होने के कारण प्रत्येक के हिस्से में आधी आधी पडी। महाराणा की

छोटी लड़की इस रोटी को खा रही थी, इतने में एक जंगली बिलाव झपटा और उसने लड़की के हाथ से रोटी छीन ली। वह जोर से चिल्ला उठी। ऐसी ऐसी आपत्तियों से अधीर होकर एक बार महाराणा ने अपने कष्टों को दूर करने के लिये अकबर के पास आत्म-समर्पण-पत्र लिख भेजा। यह बात बीकानेर नरेश के छोटे भाई पृथ्वीराज को मालूम हुई, उन्होंने आधीनता स्वीकार न करने और उन को उत्साह देने के लिये एक पत्र भेजा। पृथ्वीराज के वाक्यों से उत्तेजित होकर प्रताप-सिंह ने आधीनता स्वीकार करने का विचार छोड़ दिया।

इसी समय प्रतापसिंह के एक पुराने मंत्री ने इन को युद्ध के लिये इतना धन दिया कि जिस से १२ वर्ष तक पच्चीस हज़ार सेना का निर्वाह हो सकता था। इस सहायता को पाकर, सेना एकत्रित कर के महाराणा ने फिर से नये उत्साह के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। युद्ध में विजय पाते पाते, क्रमश सब किले उन के हाथ आ गये। कमलमीर और उदयपुर भी जीत लिया। निदान चित्तौड़, अजमीर और मंडलगढ़ के सिवाय सारे मेवाड़ प्रदेश में महाराणा प्रतापसिंह की पताका फहराने लगी। सम्राट अकबर ने १० वर्ष के घोर युद्ध के पश्चात् अपार धन और असंख्य सेना खोकर जो विजय प्राप्त की थी, उसे प्रतापसिंह ने एक ही युद्ध में अपने हाथ में ले ली। इसके बाद फिर बादशाही सेना मेवाड़ पर नहीं आई। महाराणा की विजय अटल रही, परन्तु अब भी उनको शांति नहीं मिलती थी। पहाड़ की शिखर पर चढ़ते २ ज्योंही उनकी दृष्टि चित्तौड़ के किले पर पड़ती थी, त्योंही उनका मन अधीर हो जाता था। ऐसी ही चिन्ताओं के कारण महाराणा का जीवन प्रदीप असमय में ही क्षीण होने लगा।

अन्तिम समय प्रतापसिंह ने अपने सरदारों और पुत्र अमरसिंह को बुला कर उनसे मेवाड़ की स्वाधीनता की रक्षा के लिये अनुरोध करके कहा—"मेरे पीछे पवित्र मेवाड़ भूमि मुगलों के हाथ न जाने पावे।" महाराणा के ऐसे पवित्र शब्दों को सुनकर पुत्र अमरसिंह और सरदारों ने मेवाड़ रक्षा के लिये शपथ खाई। इस शपथ को सुन कर महाराणा ने आनन्द के साथ अमरलोक की यात्रा की।

इस तरह स्वदेशाभिमानी महाराणा प्रतापसिंह का सन् १५९७ ईसवी मे परलोकवास हो गया। महाराणा ने अपने देश की रक्षा के लिये प्रबल शत्रु के हाथ से अपनी जन्मभूमि का उद्धार करने के लिये जो जो आपत्तियां सही हे, जैसा स्वार्थत्याग दिखलाया है, उसकी कथा राजस्थान के इतिहास में चिरकाल तक सोने के अक्षरों से लिखी रहेगी। महाराणा प्रताप के वीरत्व में नीचता और धोखेबाज़ी का नाम भी नहीं है। उन्होंने अपने से कमजोर शत्रु पर कभी वार नहीं किया। उनका चरित्र अतिशय पवित्र और अनुकरणीय है।

वास्तव में प्रतापसिंह के कृत्यों से राजस्थान का ही गौरव नहीं बरन सारे भारतवर्ष का गौरव बढ़ गया। किसी पुरुष ने राजकुल में जन्म लेकर और सब प्रकार की सुख सम्पदाओं का स्वामी होकर महाराणा प्रतापसिंह के समान देश हितैषिता के लिये वन वन में घूम कर क्लेश नहीं उठाया। वास्तव में उनके समान वीर और पवित्राशय पुरुष संसार में और कोई उत्पन्न हुआ है या नहीं, इस में सन्देह है। इन के गौरव का विजयस्तम्भ चिरकाल तक खड़ा रह कर भारतवर्ष और विशेष कर राजपूताने की महिमा को प्रकाशित करता रहेगा।

महादेव गोविन्द रानडे ।

महात्मा महादेव गोविन्द रानडे का जन्म सन् १८४२ ई० को १८ वीं जनवरी को पूना नगर के एक साधारण कुटुम्ब में हुआ था। इन के पिता नाशिक जिले में नौकरी करते थे। हमारे चरित्रनायक छुटपन में बहुत ही दुर्बल और स्फुर्ति हीन थे। वे किसी से बात चीत न कर के गूंगों की तरह चुपचाप बैठे रहते थे, वे बोलने में भी बहुत तुतलाते थे। माता पिता इन की ऐसी दशा देख कर मन में सोचा करते थे कि यह बालक आगे क्या करेगा ? कुछ बड़े होने पर पिता ने उन को एक मराठा शाला में भरती करा दिया। थोड़े ही दिनों के पश्चात् उन की पूर्व दशा में बड़ा परिवर्तन हो गया। शाला का कोई भी विद्यार्थी उन की बराबरी न कर पाता था। धीरे धीरे वाणी भी सुधर गई और उन्होंने अपनी बुद्धि-प्रखरता के कारण थोड़े ही समय के भीतर उस शाला की पढ़ाई समाप्त कर ली। इसके बाद उन्होंने अंग्रेजी पढ़ने के लिये सन् १८५१ ई० में कोल्हापुर हाईस्कूल में प्रवेश किया, और वहां ५-६ वर्ष रह कर एन्ट्रेंस परीक्षा पास की। इस के पश्चात् वे एलफिन्सटन् कालेज में जा कर विद्याभ्यास करने लगे। वहां बड़े २ विद्वानों के सम्पर्क से उन्हें अपनी विद्या बुद्धि बढ़ाने का अच्छा मौक़ा मिला। वे अपने अवकाश के समय को कभी व्यर्थ न जाने देते थे। छुट्टी के दिनों में जब और और विद्यार्थी सैर किया करते या और किसी आमोद प्रमोद में अपना समय बिताते थे, उस समय वे अनेकानेक विषयों के ग्रन्थों का परिशीलन करके ज्ञानार्जन किया करते थे।

इस तरह परिश्रम तथा ध्यान पूर्वक विद्याध्ययन करते करते सन् १८६२ ई० में उन्हों ने बी. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। सन् १८६५ में वे एम ए पास हुए और दूसरी वर्ष उन्हों ने एल. एल. बी. की परीक्षा भी विशेष प्रशंसा (आनर्स) के साथ पास की। इतिहास विषय की योग्यता पर विश्व-विद्यालय ने उन को एक सुवर्ण पदक प्रदान करके कालेज का फेलो बनाया।

शिक्षाकाल समाप्त होने पर पहले पहल उन्हें एक साधारण नौकरी मिली। कुछ दिनों के बाद वे उसी कालेज में अंग्रेजी साहित्य के अध्यापक नियुक्त किये गये। इस पद पर उन्हों ने बड़ी योग्यता से काम किया। शिक्षा विभाग के बड़े २ कर्मचारी भी उन के कार्य्य की प्रशंसा किया करते थे। परन्तु वे इस पद पर अधिक समय तक न रहे और वकालत करने लगे। इस तरह उन्नति करते २ वे बम्बई हाईकोर्ट के जज हो गये। जज होने पर सरकारी काम के सिवा अन्य देशोपकारी कामों में भी वे खूब योग दिया करते थे। वे अनेक सभा समाजों और बम्बई विश्वविद्यालय के सदस्य थे। समय न मिलने की वे कभी शिकायत न करते थे, क्या सरकारी और क्या अन्य काम सभी समय पर किया करते थे।

वे सुधारक भी थे। समाजिक बुराइयों को दूर करके समाज के लोगों की शारीरिक, आर्थिक, तथा नैतिक उन्नति करने के उपाय सदा सोचा करते और तदनुसार कार्य भी किया करते थे। भारतवर्ष में औद्योगिक शिक्षाप्रचार की ओर लोगों का ध्यान श्रीयुत रानडे ने ही आकर्षित कराया था। जिस समय देशोन्नति करने के लिये लोग नाना तरह के

उपायों को सोच रहे थे उस समय शिल्प व्यापार आदि के द्वारा देशोन्नति करने का विचार बहुत कम लोगों के मन में उत्पन्न हुआ था। उस समय हमारे चरित्रनायक ने औद्योगिक सभाएं करके सर्वसाधारण को इस की महत्ता प्रदर्शित की थी। इसी समय उन्होंने एकानमिक एसेज़ नामक ग्रन्थ लिख कर औद्योगिक कामों की ओर लोगों को उत्साहित किया था।

रानडे महाशय में कई उत्तम गुण थे। इतने बड़े पद को पा कर भी अभिमान तो उन में नाम को न था। उन का रहन सहन भी बहुत सादी थी, वे हमेशा देशी ढँग के कपड़े पहिना करते थे। पान, तमाकू आदि किसी भी मादक चीज का स्तैमाल नहीं करते थे। सत्य उन को बहुत प्रिय था, न्याय की मानो वे मूर्ति ही थे।

उन की सादगी यहाँ तक थी कि वे पैदल चल कर कचहरी जाया करते थे। एक दिन वे कचहरी जा रहे थे। रास्ते में एक बुढ़िया लकड़ियों का एक बोझा धरती पर रक्खे हुए खड़ी थी। बोझा अधिक था इस कारण उस बेचारी से स्वतः न उठ सकता था। उस ने इन को एक साधारण आदमी समझ कर कहा—"भैया, तनिक मेरे बोझा को हाथ लगा दो" यह सुनते ही उन्हों ने बोझे को उठा कर उस के सिर पर रख दिया। रानडे महाशय की सज्जनता को धन्य है। यदि कोई मामूली आफीसर होता तो वह इस सादगी से कभी न चलता। लकड़ी का बोझा उठाना तो बड़ी बात है वह उस बुढ़िया के कहने पर दश पांच जली कटी सुनाता। आज कल रानडे महाशय की जो यह ख्याति हो रही है वह उनके उच्चपद पाने से नहीं बरन उन के ऐसे ही अनेक सद्गुणों के कारण से हुई है।

सन् १६०१ ई० की २१ वीं जनवरी को ५६ वर्ष की अवस्था में रानडे महाशय का स्वर्गवास हो गया।

पण्डित मदनमोहन मालवीय।

आज के चार सौ वर्ष पूर्व मालवा प्रान्त से एक ब्राह्मण कुटुम्ब प्रयाग में आकर बसा था। इसी वंश में पंडित ब्रजनाथ मालवीय के घर पंडित मदनमोहन मालवीय का जन्म हुआ। पढ़ने योग्य उमर होने पर मदनमोहन एक संस्कृत पाठशाला में विद्याभ्यास करने लगे। आप के पिता ऐसे धनी तो न थे, पर उन्हों ने देखा कि, आजकल अंग्रेज़ी शिक्षा की बहुत आवश्यकता है, इस लिये इलाहाबाद के ज़िला स्कूल मे आप भर्ती किये गये और वहां से प्रवेशिका परीक्षा पास करके आप म्योर सेन्ट्रल कालेज में विद्याभ्यास करने लगे। आप की सुशीलता और होशयारी के कारण अध्यापकों की आप पर विशेष कृपा रहती थी। निदान सन् १८८४ ई० में आप अंग्रेज़ी की बी. ए. परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

मालवीय जी की असाधारण योग्यता देख कर स्वर्गीय राजा रामपालसिंह ने आपको अपने हिन्दुस्थान नामक दैनिक पत्र का सम्पादक बनाया। २॥ वर्षतक इस पत्र का सम्पादन कर के आपने उस का बहुत मान बढ़ा दिया था। इस के पश्चात् कुछ दिनों तक आप एक अंग्रेज़ी पत्र का सम्पादन भी करते रहे।

कुछ दिनों के बाद आप ने अपने इष्ट मित्रों की सलाह से वकीली परीक्षा पास की और प्रयाग में सन् १८६३ में आप

हाईकोर्ट के वकील बन गये। आप की वकालत भी खूब चलने लगी; परन्तु आप केवल धन संचय के लालच में न पड़कर सर्व साधारण के हित करने में भी अधिक भाग लेने लगे। इस कारण मालवीय जी का मान सर्वत्र होने लगा और वे कुछ समय में संयुक्त प्रान्त के प्रधान नेता समझे जाने लगे। आप म्यूनीसिपिल कमैटी के वाइस चेअरमेन, प्रयाग विश्वविद्यालय के सभासद और प्रान्तिक क़ानून बनाने वाली सभा के सदस्य हो गये। एक बार आप जातीय महासभा (कांग्रेस) के सभापति भी चुने गये थे।

मालवीय जी एक सुयोग्य पुरुष हैं, आप का नाम सारे देश भर में बड़े आदर के साथ लिया जाता है; राजा और प्रजा दोनों ओर से आप का एक समान आदर होता है। आप बड़े विद्वान, धार्मिक, स्वदेशभक्त, राजभक्त उत्तम लेखक और प्रभावशाली वक्ता हैं; अंग्रेजी साहित्य इतिहास आदि का संचय जैसा आप ने किया है वैसा ही संस्कृत विद्या का ज्ञान और अपनी मातृभाषा हिन्दी का प्रेम भी आप में अगाध है।

मालवीय जी पाठशालाओं में धर्म और नीति की शिक्षा दिलाने के बड़े पक्षपाती हैं। इसी तरह शिल्प और वाणिज्य शिक्षा की भी आप बड़ी जरूरत समझते हैं।

इस समय मालवीय जी तीन प्रसिद्ध पत्रों को चला रहे हैं—हिन्दी का प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र अभ्युदय मर्यादा नामक मासिक पत्रिका और अंग्रेज़ी का लीडर। परन्तु इन का सम्पादन आप स्वयं नहीं करते हैं।

मालवीय जी अपने देशवासियों की भलाई के लिये सदैव तैयार रहते हैं। आप दया और स्वार्थ त्याग के तो अवतार ही हैं। आप पूर्ण देशभक्त हैं और राजकीय नियमों के भीतर

रहकर राजनैतिक सुधार किया करते हैं। आप की यह इच्छा बहुत समय से थी, कि इस देश में एक ऐसा विश्वविद्यालय खोला जाय जिस के द्वारा हिन्दुओं को अङ्गरेजी उच्च शिक्षा के साथ साथ अपने धर्म, साहित्य और वाणिज्य की भी शिक्षा मिल सके। मालवीय जी ने इस देशोपकारी काम के लिये वकालत को छोड़कर हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये चन्दा इकट्ठा करना प्रारंभ कर दिया। इस काम में आप को पूर्ण सफलता हुई। इस विश्वविद्यालय के स्थापित करने की सरकार से सहानुभूति प्राप्त हो गई है। आज कल आप इस के लिये चन्दा इकट्ठा कर रहे है। देशवासी इस काम में तन, मन, धन से सहायता दे रहे है। अब इस के स्थापित होने में अधिक विलंब नहीं है। मालवीय जी ने हिन्दू-विश्व-विद्यालय स्थापित करा के इस देश का असीम उपकार किया है आप का नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

राजा विनय कृष्ण देव बहादुर।

राजा विनय कृष्ण देव बहादुर का जन्म सन् १८६६ ईस्वी के अगस्त मास में कलकत्ता शोभा बाज़ार के एक प्रसिद्ध राजवंश में हुआ था। इन के पिता महाराज कमल कृष्ण देव बहादुर एक सद्गुणी व्यक्ति थे। विनय कृष्ण बाल्यकाल ही से विद्यानुरागी थे। ये लक्ष्मी के कृपापात्र होकर भी बड़े ही विद्वान् और विनम्र थे। इन का मातृभाषा-प्रेम सराहनीय था। ये बड़े उदारचेता और कर्म्मनिष्ठ पुरुष थे।

इस तरह अनेक सद्गुणों का अस्तित्व एक ही पुरुष में होना बहुधा कम पाया जाता है। बहुधा श्रीमानों के लड़के बाल्य-काल ही से अपने माता पिता के दुलारे हो कर, पढ़ने लिखने में अनुत्साही होते हैं, परन्तु हमारे चरितनायक ऐसे न थे। अल्प वयस ही में इन्हों ने अपने घर एक सभा स्थापित की थी। इस सभा में अनेक गण्यमान्य पुरुष और पंडित लोग निमन्त्रित किये जाते थे। वे विविध विषयों पर उपदेश देते और बालक विनयकृष्ण उसे बड़े ध्यान से सुनकर शिक्षा-ग्रहण करते थे।

१७ वर्ष की अवस्था में कुमार विनय कृष्ण ने दीन, दुःखी और अनाथ विद्यार्थियों की दुरावस्था से मर्माहत होकर, अपने घर 'शोभाबाज़ार हितकारी सभा' नामक एक सभा स्थापित की थी। यह सभा अब तक चल रही है और अनेक दीन और अनाथ विद्यार्थी इस सभा से मासिक आर्थिक सहायता पाते हैं।

विनय कृष्ण की अवस्था जिस समय १६ वर्ष की थी उस समय इन के सुयोग्य पिता का परलोक बास हो गया और कुछ ही वर्षों के पश्चात् इन के ज्येष्ठ सहोदर भी असमय ही में काल-कवलित हो गये। इस कारण अब इस सुविशाल जमींदारी का भार हमारे चरितनायक ही पर आ पड़ा। इन की देख रेख करने वाला दूसरा कोई न रहा। कई तो ऐसे प्रसंग पर, अपने पिता की जायदाद पाकर कुसङ्ग में पड़ सर्वस्व खो बैठते हैं, किन्तु युवक विनय कृष्ण बड़े बुद्धिमान और चतुर थे। नीच और घृणित कामों की ओर उन का मन कभी न जाता था। सत्य, उच्च और देश तथा समाज के मंगलकारी कृत्यों के करने में उन का अनुराग था। अनेक

शिक्षित लोगों को एकत्रित करके उन्हों ने 'वङ्गीय-साहित्य-परिषद' नामक एक सभा स्थापित की। इसके कई वर्षों बाद 'साहित्य सभा' नाम की एक और सभा की स्थापना की गई। इन दोनों सभाओं से बङ्गला भाषा और उस के साहित्य का विशेष उपकार हुआ 'साहित्य सभा' अब तक इन के भवन ही में अवस्थित है और सुचारु रूप से चल रही है। आप ही इस सभा के सभापति थे। इस की उन्नति के लिये इन्होंने बहुत सा द्रव्य खर्च किया था। इस सभा के द्वारा साहित्य संहिता, नामक एक मासिक पत्रिका भी निकलती है।

हमारे चरित नायक अंग्रेजी के मार्मिक विद्वान् होकर भी अपनी मातृ-भाषा के सुलेखक थे। वङ्ग भाषा में इन का लिखा हुआ 'कलकत्ता का इतिहास' एक बहुत उत्तम ग्रन्थ है। इन में और भी अनेक गुण थे। अहङ्कार नाम को न था। इन के समीप धनी तथा कङ्गाल दोनों एक समान आदर पाते थे। ये किसी का अनिष्ट नहीं करते थे और यहाँ तक कि समय पर अपने शत्रुओं का उपकार करने में कभी कुण्ठित नहीं होते थे। एक बार एक व्यक्ति ने समाचार पत्र द्वारा राजा विनयकृष्ण की निन्दा फैलाना प्रारम्भ किया। यदि वे चाहते तो उसे समुचित दण्ड दिला सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कुछ दिनो के पश्चात् वह मनुष्य एक बड़ी आपत्ति में फस गया। दयालु राजा विनयकृष्ण ने उस समय उसको आपत्ति से छुड़ाया। केवल इतना ही नहीं, बल्कि उसका समाचार-पत्र बन्द हो जाने पर, जब वह अर्थाभाव के कारण, खाने पीने से भी तंग था उस समय, कई महीनों तक हमारे चरितनायक ३०) मासिक सहायता देते रहे।

श्रीमानों में इस तरह उदार, निष्कलंक और अनेक गुण-सम्पन्न व्यक्ति बहुत कम दिखाई देते हैं। जिस मनुष्य की इन से एक बार बात चीत हो जाती थी वह इन के विनय, शिष्टाचार आदि से मुग्ध हो जाता था। महाराज के इन्हीं गुणों के कारण सरकार ने इन्हें 'राजा बहादुर' की उपाधि प्रदान की थी।

शोक के साथ लिखना पड़ता है कि ऐसे दानी, विद्याप्रेमी राजा साहब का सन् १९१२ के सितम्बर मास की पहिली तारीख को ४६ वर्ष की अवस्था में ही स्वर्गवास हो गया।

श्रीयुक्त मोहनदास कर्मचन्द गान्धी।

भारतवर्ष में ऐसा कोई भी शिक्षित पुरुष न होगा जो कर्मवीर गान्धी के नाम को न जानता हो, या उन की दिगन्त व्यापिनी कीर्ति से सर्वथा अनभिज्ञ हो। इन का जन्म काठियावाड़ प्रांत के अन्तर्गत पोरबन्दर नामक राज्य में सन् १८६९ ई० की २री अक्टूबर को एक वैश्य कुल मे हुआ। इन के पिता और पितामह परम वैष्णव और गीता प्रेमी थे. वे पोरबन्दर राज्य के दीवान थे। इन के चरित्र पर सद्गुणी पिता और विशेष कर महात्मा-स्वी, धर्मप्राणा माता का उत्तम प्रभाव पड़ा। स्थानीय पाठशाला में इन्होंने प्राथमिक शिक्षा पाई और फिर दश वर्ष की उम्र तक राजकोट के वर्नाक्यूलर स्कूल में मातृभाषा गुजराती की शिक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् काठियावाड़ हाई स्कूल मे अङ्गरेज़ी पढना प्रारंभ किया और १७ वर्ष की उम्र में मट्रिक परीक्षा पास की। इस समय इन के

पिता का देहान्त हो गया था। अब इन्हें कोई कोई बी० ए० पास करने की, और कोई कोई विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करने की सलाह देने लगे। इन को नये देश और नये नये समाजो के देखने की बड़ी अभिलाषा रहा करती थी, अतएव विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करना उन्हें अधिक पसंद आया; और वे अनेक विघ्न बाधाओं को हटाते हुए सन् १८८८ के सितम्बर मास में लन्दन जा पहुँचे।

पश्चिमी देशो के लोग हिन्दुओं से बहुधा दार्शनिक विषयों पर प्रश्न किया करते हैं। अवसर पड़ने पर इन से भी लोगो ने प्रश्न किये परन्तु ये इन विषयों से सर्वथा अनभिज्ञ थे, अतएव उत्तर न दे सकने के कारण इन्हें कई बार लज्जित होना पड़ा। उन्होंने उसी समय से गीता का अध्ययन प्रारंभ कर दिया। गीता पाठ से उन्हें अलभ्य लाभ हुआ और उनके धार्मिक विचार बहुत परिवर्तित तथा स्थिर हो गये।

जब हमारे चरित्रनायक तीन वर्ष के पश्चात् बैरिस्टरी पास कर के स्वदेश लौटे तब उन्हें एक दारुण दुःख का सामना करना पड़ा। विलायत प्रवास-काल में उन की माता का परलोक वास हो गया था। यह दुःखदाई समाचार पढ़ाई में व्याघात पहुँचने के भय से उन्हें विदित नहीं किया गया था। स्वदेश लौटने पर माता के चिरवियोग से उन्हें जो दुःख हुआ वह अकथनीय है।

इस के पश्चात् आपने राजकोट की अदालत में अपना वकीलती धन्धा चलाया। थोड़े ही दिनों के पश्चात् आप की गणना उत्तम बैरिस्टरों में होने लगी। हाईकोर्ट वकील भी आप से सलाह लेने लगे। १॥ वर्ष वकीलत करने के

पश्चात् सन् १८९३ ई० में एक भारतीय दूकानदार के मुकद्दमे की पैरवी करने के लिये आप दक्षिण आफ्रिका बुलाये गये। वहां पहुंच कर आफ्रिका प्रवासी भारतवासियों के कष्टों को देख आप को जो दुख तथा विस्मय हुआ वह वर्णनातीत है। उस देश में पैर रखते ही आपको महान् अपमान, अन्याय और निर्दयता की बौछार सहन करनी पड़ी। आप ने देखा कि भारतीय जन प्रथम दर्जे का टिकट लेकर भी अङ्गरेज़ों के साथ रेलों पर नहीं बैठ सकते। ट्राम गाड़ियों की कुर्सियों तक उन की पहुंच नहीं। वे बाहर धूप तथा वर्षा में खड़े रहते हैं। उन लोगों की आज्ञा पालन न करने से पद पद पर ठोकरें खाते हैं! आफ्रिका प्रवेश करने के समय से वहां की अदालत तक पहुंचाने में हमारे चरित्रनायक को इन सब अन्यायों का स्वत अनुभव करना पड़ा।

उन लोगों के पाशविक अत्याचारों को देखकर श्रीयुक्त गान्धी को पहले तो महान् खेद और विस्मय हुआ परन्तु पीछे आप के भाव बदल गये। आप ने सोचा कि हमारी हीनता ही इन अपमानों का मूल कारण है। यह समय अपमानों से डरने या दुखी होने का नहीं, वरन सहिष्णुता और धैर्यपूर्वक उन के अन्यायों के प्रतिकार करने का है। उसी समय अपने देश भाइयों को इस महान कष्ट तथा कलंक से बचाने के लिये आपने बीड़ा उठाया।

उस मुकद्दमे की पैरवी करने में एक वर्ष व्यतीत हो गया। उसी समय वहां के निवासियों ने भारतीयों को थोड़े बहुत जो कुछ अधिकार प्राप्त थे उन्हें भी छीनने के लिये प्रयत्न शुरू किया। भारतवासी दैव के भरोसे रहने वाले हैं उन में उत्साह और मिलजुल कर काम करने की शक्ति पैदा करना

गांधी सरीखे कर्मवीर पुरुषों का ही काम है। श्रीयुक्त गांधी ने सहस्रों भारतीयों के हस्ताक्षरयुक्त एक अर्जी नेटाल सरकार के पास भेजी और भारतीयों के विरुद्ध जो कानून बनने वाला था, उस का विरोध किया। गान्धीजी हतोत्साह होने वाले पुरुष नहीं हैं, जब उन्हों ने देखा कि उस अर्जी का कुछ फल न हुआ तो उन्हों ने बिलायत की पार्लीमेंट में एक अर्जी भेजी। आप केवल इतना कर के ही नहीं रह गये बरन आप उसी वर्ष नेटाल-भारतीय-महासभा (Netal Indian Congress) और नेटाल-भारतीय-शिक्षा समिति स्थापित की।

भारतवासियों का इस ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करने के लिये ३ वर्ष के पश्चात् आप भारत लौट आये। यहां पर आप का खूब स्वागत किया गया। आप ने जगह जगह सभाएँ कर के आफ्रिका प्रवासी भारतवासियों की दुर्दशा का लोगों को ज्ञान कराया! कई वर्षों के बाद घर आकर स्त्री पुत्रों के निकट आप एक दिन भी सुख से नहीं रहे। भारत के प्रांत प्रांत में भ्रमण कर विदेशों में भारतवासियों की शोचनीय स्थिति और बर्तमान समय के अपने कर्तव्य पालन के विषय में लोगों को सचेत किया। इसी समय नेटाल पार्लीमेंट का अधिवेशन होने वाला था, अतएव आप को शीघ्र वहां लौट जाना पड़ा। आप के साथ लगभग ६०० भारतवासी भी आफ्रिका को गये। भारतवर्ष में आफ्रिका वालों के पाशविक अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन करने के कारण वहां के निवासी श्रीयुक्त गांधी से बहुत चिढ़ गये थे। इस लिये जब उन्हों ने सुना कि गान्धी आफ्रिका आने वाले हैं तब उन का क्रोध पुनः प्रज्वलित हो उठा और उन्हों ने आप को आफ्रिका में न घुसने देने की पूर्ण तैयारी की। जब जहाज़ आफ्रिका पहुंचा तब वहां की

सरकार ने उन को आफ्रिका प्रवेश करने का निषेध कर दिया। बहुत लिखा पढ़ी तथा कई धमकी देने पर बड़ी मुश्किल से आज्ञा मिली। इधर गोरे लोगों का भारत वासियों के विरुद्ध आन्दोलन बढ़ने लगा और उन्हों ने गान्धी तथा उन के साथियों को रोकने के लिये एक पल्टन सी बना ली। जब श्रीयुत गान्धी जहाज़ से उतरे उस समय वहां पर उन के विरोधियों का बड़ा जमाव था। दिन भर आप किसी तरह वहां से न निकल सके। रात होते ही श्रीमती गांधी अपने पुत्र सहित एक मित्र के घर भेज दी गईं। पश्चात् एक गोरे मित्र के साथ आप ने भी प्रस्थान किया। रास्ते में लोगों ने आप को पहिचान लिया। फिर क्या था, आप पर ईंट पत्थरों की बरसा होने लगी। यदि उस समय एक दयालु रमणी रक्षा न करती तो आप का बचना कठिन था। अंत में कई आपत्तियों को सहते हुए आप अपने स्त्री पुत्र के निकट जा पहुंचे। धीरे धीरे यह झगड़ा शांत हो गया और श्रीयुक्त गान्धी सकुटुम्ब वहां रह कर भारतवासियों के उद्धार की चेष्टा करने लगे। वहां के निवासियों के विरोध करते रहने पर भी वहां की अदालत ने कृपा कर आप को वकौलत करने की अनुमति दे दी थी अतएव आप अवकाश मिलने पर वकी-लत भी किया करते थे।

दक्षिण आफ्रिका के ट्रांसवाल और आरेंजिवर प्रदेश में बोअर तथा नेटाल और केपकालोनी में अंग्रेज़ लोग रहते हैं। बोअरों की स्वार्थपरता के कारण अक्टू-बर सन् १८९९ में बोअर और अंग्रेजों में युद्ध छिड़ गया। कर्मवीर गान्धी ने इस मौके को हाथ से न जाने दिया। आप ने नेटाल सरकार की अनुमति से भारतीयों की एक बड़ी सेना संगठित की। इस सेना में बहुसंख्यक कुली,

व्यापारी, विद्यार्थी, डाक्टर आदि सम्मिलित हुए। कर्मवीर गान्धी की आधीनता में इस सेना ने अच्छा काम किया। इस सेना की सफलता को देख कर अंग्रेज़ों ने भारतीयों की बड़ी प्रशंसा की। अंग्रेजी सेना के जनरल बुलर, गान्धी की कार्य-कुशलता को देखकर उन्हें असि. सुपरिन्टेंडेंट कहा करते थे। कई वर्षों के युद्ध के बाद अंतमें बोअरों की हार हुई और उन के उपरिलिखित दोनों प्रांत अंग्रेजी राज्य में मिला लिये गये और वे उपनिवेश घोषित हुए।

इतना प्रयत्न करने पर भी आफ्रिका प्रवासी भारत-वासियों की दशा कुछ भी न सुधरी। श्रीयुक्त गान्धी ने सोचा कि भारतवासियों में उत्साह बनाये रखने और अपने मंतव्य समय समय पर गवर्नमेंट को प्रगट होते रहने के लिये एक पत्र की बड़ी आवश्यकता है। इस लिये आप ने Indian Opinion नामक पत्र निकाला। इस काम में पहली वर्ष में आप को ३० हज़ार रुपये का घाटा हुआ, घाटा सह कर भी पत्र जारी रहा और उस ने भारतीयों का बड़ा हित साधन किया। सन् १९०४ ई० में आप ने अपने रुपयों से एक बहुत विस्तृत जमीन खरीदी। उस ज़मीन पर एक नई बस्ती बसाई गई। प्रत्येक भारतीय को मकान बनाने तथा उस के निर्वाह योग्य खेती करने के लिये जगह दी जाती थी। उस ज़मीन का मूल्य उस की आर्थिक दशा सुधरने पर लिया जाता था। श्रीयुक्त गान्धी ने इस जगह पर भारतीय विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये स्कूल खोले और उन के स्वास्थ्य रक्षा के लिये भी समुचित प्रबन्ध किया। आपके इस उद्योग से भारतवासियों में एकता और कार्यशीलता की आशातीत उन्नति हुई।

भारतवर्ष से दक्षिण आफ्रिका को जो प्रतिज्ञाबद्ध कुली जाते हैं, उन में से म्याद पूरी होने पर कई तो लौट आते हैं और कई वहीं बस जाते हैं। वहां बहुतेरे व्यापारी भी जा पहुंचे हैं। भारतीय लोगों में एक विशेष गुण है कि वे अपना निर्वाह बहुत थोडे खर्च से कर लेते हैं, अतएव वे बहुत कम मुनाफे पर रोज़गार भी कर सकते हैं। परन्तु अंग्रेज़ लोगों ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि उन का खर्च बढ़ा चढ़ा है। इस का नतीजा यह होता है कि भारतीय व्यापारियों के सामने अंग्रेज़ व्यापारियों से कोई माल नहीं लेता। यही द्वेष का मूल कारण है और इसी लिये वे लोग भारतवासियों को वहां से निकाल कर अपना निष्कंटक व्यापार चलाना चाहते हैं। भारतवर्ष से जो कुली भेजे जाते हैं वे इस शर्त पर भेजे जाते हैं कि उन्हें किसी तरह की तकलीफ न दी जाना चाहिये। परन्तु वहां पहुंचने पर उन लोगो के साथ जैसी सख्ती का बर्ताव किया जाता है उस का किंचित वर्णन नीचे लिखा जाता है।

१—कोई कुली अपने मालिक के खेत से १ मील से अधिक दूर नहीं जा सक्ता, यदि जावे तो उस का खोज मे जो खर्चा पड़े वह उस की मजदूरी में से काट लिया जाता है।

२—मालिक की शिकायत करने पर यदि कुली उसे प्रमाणित न कर सके तो उस का जुर्माना किया जाता है।

३—बीमारी के दिनों में चार आना प्रति दिन कुली को मज़दूरी में से काट लिया जाता है, यदि वह दो वर्ष से पुराना नौकर हो तो दो आना रोज।

४—यदि बहुतेरे कुली मिलकर अपने मालिक की शिकायत करें (चाहे वह शिकायत सच भी हो और उस पर से मालिक को दंड भी मिल जावे) तो प्रत्येक कुली का ३०)

जुर्माना किया जाता है, या उस के अभाव में दो दो महीने की कठोर जहल दी जाती है। बेचारे कुलियों को सोते, जागते उठते, बैठते ठोकरे खाना पडती हैं, वे सताये जाते हैं और उन्हें ज़रा ज़रा से कुसूरों पर जुर्माना देना पडता है। इस कठोरता के कारण प्रतिवर्ष लगभग ८० कुली आत्मघात करके मर जाते हैं! बेचारी अबलाओं का बड़ी क्रूरता के साथ सतीत्व नष्ट किया जाता है—कोई सुनने वाला नहीं।

कुलियो के अतिरिक्त जो भारतवासी वहां रहते हैं उन के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है इस का भी कुछ दिग्दर्शन कराना उचित है। यह बात हम पहले ही लिख चुके हैं कि भारतीयजन अंग्रेज लोगों के साथ रेल वा ट्रामगाड़ियों में नहीं बैठ सकते हैं। यदि किसी को दुकान खोलना हो तो उसे प्रतिवर्ष लैसंस लेना पड़ता है। आफीसरों की इच्छा चाहे लैसंस दे वा न दें। दूकान का हिसाब किताब अंग्रेज़ी में रखना पड़ता है। कहने का मतलब यह कि बडी कठिनाई से दूकान खोली जा सकती है। जो कुली या उन के वंशज वहा बसते है उन्हें अन्य टैक्सो के सिवा प्रतिवर्ष प्रति मनुष्य ४५) रु. टैक्स देना पडता है। विचार करने का स्थल है कि स्वतंत्र होने पर एक साधारण कुली जो मजदूरी या किसी किस्म का रोजगार कर के अपना निर्वाह चलाता है उसकी आमदनी लगभग १८०) वार्षिक से अधिक नहीं होती है उस पर ४५) टैक्स! यदि दुर्भाग्य से उस के घर दो तीन बेकार आदमी हुए तो उस की सारी आमदनी इस टैक्स ही को हुई! यदि टैक्स न चुका तो जैल तैयार है; कहिये, कैसा अत्याचार है!! पहले भारतवासियों को म्यूनीसिपल मेम्बर बनने और चुनने का अधिकार था परन्तु अब वह भी नहीं है। पहिले भारतीय विद्यार्थी वहां के स्कूलों में पढ़ते थे,

परन्तु अब वे उन स्कूलों में नहीं पढ सकते। ट्रांसवाल में भारतवासियों को सड़कों की पटरियों पर से चलने का अधिकार नहीं है। यदि कोई नेटाल से ट्रांसवाल आना जाना चाहे तो वह बिना सर्टीफिकेट हासिल किये नहीं आ जा सकता। वहाँ पर हिन्दू या मुसलमानो धर्मशास्त्रों के अनुसार किये हुए विवाह जायज नहीं समझे जाते और उन से जो सन्तान पैदा होती है, वह उन के कानून के मुताबिक वर्णसंकर समझी जाती है! इत्यादि कहां तक लिखें भारतवासियों के साथ दक्षिण आफ्रिका में जैसे २ अत्याचार किये जाते हैं उन का इस संक्षिप्त लेख में वर्णन करना असंभव है।

हमारे चरित्रनायक कर्मवीर गान्धी ने इन राक्षसी अत्याचारों को रोकने के लिये मिस्टर अली नामक एक महाशय को साथ लेकर विलायत की यात्रा की। वहां के लोगों ने आप के व्याख्यानों को सुनकर सहानुभूति अवश्य दिखलाई परन्तु उसका फल कुछ न हुआ। तब तो हमारे चरित्रनायक ने एक ऐसा अस्त्र ग्रहण किया कि जिस ने सारे सभ्य संसार को चकित कर दिया। यह अस्त्र निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive Resistance) था। इस का मतलब यह था कि जो कानून न्याय और नीतिपूर्ण न हों वे न माने जाँय—उन का प्रतिपालन न किया जाय। गांधी की अनुमति से भारतवासियों ने उन अन्यायपूर्ण नियमों का उल्लङ्घन करना प्रारम्भ कर दिया। सहस्रों लोग बिना रजिस्ट्री के ट्रांसवाल जा बसे, बिना सर्टीफिकेट के नेटाल और ट्रांसवाल के बीच आना जाना शुरू हो गया। बिना लैसंस के दूकानें खोली जाने लगी। पकड़े जाने पर लोग सहर्ष जेल जाने लगे। जेलें ठसाठस भर गईं। भारतीय लोगों में महात्मा गांधी की कृपा से कष्ट-सहिष्णुता, बीरता, धैर्य आदि गुणों का आवि-

भाव हो गया। और सब तरह के दुःखों और अत्याचारों को सहने के लिये वे तैयार हो गये। तब वहां की सरकार ने घबड़ा कर कहा कि यदि भारतवासी एक बार रजिस्ट्री करा लेंगे तो हम इन सब नियमों को बदल देंगे। महात्मा गांधी ने उन के विश्वास में आकर रजिस्ट्री करा ली, परन्तु तो भी यूनियन सरकार ने अपने वचनों का प्रतिपालन नहीं किया। तब तो वे रजिस्ट्री की रसीदें जला दी गईं और फिर आन्दोलन शुरू किया गया। हमारे चरित्रनायक को इस समय तक तीन बार जेल जाना पड़ा। एक बार जब आप जेल से छूट कर पुनः जेल जाने की तैयारी में थे उस समय आप की स्त्री एकाएक बीमार हो गई—दूसरी बार लड़का सख्त बीमार हो गया—परन्तु इस की कुछ परवा न कर के आप जेल गये। जेल में जो कष्ट दिये जाते थे उन को सुनकर कलेजा कांपता है। परन्तु भारतवासी यह सब सहने को तैयार हो गये। इसी समय गांधी ने विलायत और भारत में आफ्रिका की दुःख कहानी सुनाने के लिये लोगों को भेजा। श्रीयुत गांधी की अनुमति से मि० पोलक भारत को आये, ये अंग्रेज होने पर भी भारतीयों के सच्चे हितैषी हैं। विलायत को स्वतः गांधी गये। वहां आप के उद्योग से लोगों ने बहुत कुछ सहानुभूति दर्शाई और आर्थिक सहायता भी की। भारत और विलायत में भी यह आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। फलतः इस ओर भारत सरकार ने भी ध्यान दौड़ाया। उधर बोअर सरकार ने भी सख्ती कम कर दी और उस ने इन कानूनों के बदलने तथा नये कानूनों में भारतीयों के हित का ध्यान रखने का वचन दिया। इतना होने पर आन्दोलन बन्द कर दिया गया।

सन १९१२ ई० में माननीय गोपाल कृष्ण गोखले आफ्रिका गये। उस समय वहाँ के प्रधान मन्त्री जनरल बोथा ने भारतीयों के साथ सहानुभूति दिखाते हुए उन से कहा था कि भारतवासियों की सब कठिनाइयाँ शीघ्र दूर कर दी जावेंगी। परन्तु जब वहां की सरकार ने अपने वचनों के अनुसार कार्य न किया तब फिर से निष्क्रिय प्रतिरोध प्रारम्भ किया गया। परन्तु पहली बार से इस बार भारतवासियों का उत्साह बहुत बढ़ा चढ़ा था—उन की संख्या भी पहले से अधिक हो गई थी। कर्मवीर गान्धी फिर अगुआ हुए और कई हज़ार लोगों के साथ ट्रांसवाल की सीमा पार करने लगे। फिर जेलखानों की आबादी बढ़ गई, महात्मा गांधी भी नौ मास के लिये जेल भेजे गये, वहां पर इन लोगों को दारुण कष्ट दिये गये, परन्तु भारतीय वीरों ने उन सब को सहन करते हुए अपना आन्दोलन जारी रक्खा। इस धर्म युद्ध में भारतीय स्त्रियों ने भी योग दिया और उन्हों ने कष्टों की परवा न कर के सहर्ष जेल जाना स्वीकार किया। श्रीमती गान्धी भारतीय स्त्रियों की नेत्री थीं। उस समय भारतवर्ष से भी खूब आर्थिक सहायता मिली। इस बार यह आन्दोलन आफ्रिका में ही परिमित न रह कर भारतवर्ष और इग्लेंड तक पहुंचा। जब यह आन्दोलन शांत होता दिखाई न दिया, तब इसके निपटारे के लिये एक कमीशन नियुक्त हुआ। इस कमीशन में सम्मिलित होने के लिये विलायत की पार्लीमेंट तथा भारत सरकार की ओर से कुछ मेंबर भेजे गये। कर्मवीर गांधी से इस कमीशन में उपस्थित होने के लिये कहा गया परन्तु आप ने उसे स्वीकार नहीं किया और पूर्ववत आन्दोलन जारी रक्खा। इस बार भारत सरकार और विशेष कर हमारे बड़े लाट श्रीमान् हार्डिंग महोदय ने भारतवासियों

का खूब पक्ष किया। परिश्रम का फल कभी व्यर्थ नहीं जाता जिस कार्य के लिये तन, मन, धन से उद्योग दिया जाता है। वह अवश्य सफल होता है। अंत में उन लोगों को वे क्रूर नियम उठा देना पड़े। यद्यपि इस समय वहां पूर्ण सुधार नहीं हुआ है और भारतीयों को अभी कई अधिकार प्राप्त करना है तो भी ४५) वाला टैक्स, आदि जो क्रूर नियम थे वे दूर कर दिये गये हैं। यूनियन सरकार ने भारतवासियों के विषय में कानून बनाते समय उन से मत लेने और तद्‌नुसार कार्य करने का तत्व स्वीकार कर लिया है।

भारत माता के सच्चे सपूत कर्मवीर गांधी को धन्य है! आप के प्रबल उद्योग, असाधारण स्वार्थत्याग और दारुण कष्ट-सहिष्णुता से आफ्रिका प्रवासी भारतवासियों की दशा बहुत कुछ सुधर चली है और भविष्य में बहुत कुछ सुधरने की आशा है। परमात्मा कर्मवीर गांधी को चिरायु करै।

माननीय गोपालकृष्ण गोखले।

माननीय गोपालकृष्ण गोखले का जन्म सन् १८६६ ई० में कोल्हापुर में हुआ था। इन के माता पिता गरीब थे, उन्हें आशा थी कि पुत्र पढ़ लिख कर द्रव्योपार्जन द्वारा हमारे दुःख दारिद्र को दूर करेगा। परन्तु उन्हों ने द्रव्योपार्जन कर के अपने को धनी बनाने की अपेक्षा भारत माता की सेवा करना आवश्यक समझा। सन् १८८४ ई० में उन्हों ने बी. ए. पास किया। इसी समय पूना में कई सज्जनों ने दक्षिण एजूकेशन सोसाइटी स्थापित की थी। माननीय गोखले को इस सोसाइटी के उद्देश्य उत्तम जान पड़े और वे उसके जीवन सदस्य बन गये। इस सोसाइटी के जीवन सदस्यों को ७५)

मासिक वेतन पर २० वर्ष तक सोसाइटी के स्कूलों में शिक्षक का काम करना पड़ता है—इस शर्त के अनुसार मान० गोखले फरगूसन कालेज के इतिहास तथा अर्थ-शास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए। वे छुट्टी के समय में अपने अपमान व कठिनाइयों की तनिक भी परवा न करके कालेज के लिये चंदा इकट्ठा किया करते थे। इस तरह बड़े परिश्रम से उन्हों ने दो लाख रुपया संग्रह कर के कालेज की आर्थिक दशा सुधारी। मान० गोखले पर घर गृहस्थी का पूरा भार था उन की आर्थिक दशा भी अच्छी नहीं थी उन्हें समय समय पर द्रव्य के लिये चिन्तित होना पड़ता था, परन्तु उन्हों ने अपने स्वार्थ के लिये देशसेवा के कार्य में कभी शिथिलता नहीं आने दी।

श्रीयुक्त गोखले ने स्वनामधन्य श्रीयुक्त रानडे की शिष्यता ग्रहण करके देशोद्धार विषयक अपने ज्ञान को परिमार्जित तथा परिवर्धित किया। इस के पश्चात् सन् १८८७ में श्रीयुक्त गोखले 'पूना सर्वजनिक सभा' के मुखपत्र 'क्वार्टर्ली जरनल' के सम्पादक हुए। उन्हों ने लगभग ४ वर्ष तक 'सुधारक' नाम के एक सामाहिक पत्र का भी सम्पादन किया। बम्बई-प्रांतिक सभा के मंत्री के पद पर भी उन्हों ने ४—५ वर्ष तक काम किया। १८९५ ई० में पूना में जो कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था श्रीयुक्त गोखले उस के मंत्री बनाये गये थे। सन् १८९७ ई० में भारतीय व्यय संम्बन्धी वेल्बी कमीशन के सन्मुख सम्मति देने के लिये कई सज्जनों के साथ मान० गोखले भी बिलायत गये थे। वहां पर उन की विलक्षण योग्यता को देख कर लोग मुग्ध हो गये। बिलायत से लौटने पर कुछ समय के पश्चात् वे बम्बई की व्यवस्थापक सभा के मेम्बर चुने गये। इस पद पर रह कर उन्हों ने अनेक

उपयोगी काम किये। सन् १९०२ ई० में फरगूसन कालेज की १८ वर्ष की सेवा के उपरान्त उन्हें पेन्शन मिली और इसी वर्ष वे श्रीमान् वाइसराय साहब की बड़ी व्यवस्थापक सभा के सदस्य निर्वाचित किये गये। इन की बजट सम्बन्धी वक्तृता बड़े महत्व की हुआ करती थी-उन की बढ़ी चढ़ी जानकारी और भाषणपटुता के सामने विपक्षी भी सिर झुकाते थे। उन की उच्चतम योग्यता को देख कर सरकार ने उन्हें सी. आई ई का उपाधि से विभूषित किया था।

सन् १९०५ ईस्वी में बनारस म जो कॉंग्रेस (जातीय महासभा) हुई थी श्रीयुक्त गोखले उस के सभापति हुए थे। उसी वर्ष उन्हों ने एक अत्यन्त उपयोगी संस्था का संगठन किया। उन्हो ने देखा कि इस समय देश को कुछ ऐसे सच्चे सेवकों की आवश्यकता है कि जो मातृ-भूमि की सेवा के लिये अपने जीवन को अर्पण कर दें और विशेष योग्यता पूर्वक उस की सेवा करें। अतएव उन्हों ने "भारत-सेवक-समिति" संगठित की—जो आज तक विशेष योग्यता पूर्वक भारत का हित साधन कर रही है। इसी वर्ष उन्हें फिर बिलायत जाना पड़ा। वहां पहुंच कर उन्हों ने तत्कालीन वाइसराय लर्ड कर्ज़न की दमन नीति के विरुद्ध तथा भारतवासियों की भलाई के लिये खूब आन्दोलन किया। उन्हें लगभग ५० दिनों में लदन के भिन्न भिन्न स्थानों पर ४५ से अधिक व्याख्यान देना पड़े।

सन् १९१२ ईस्वी में श्रीयुक्त गोखले दक्षिण आफ्रिका गये और उन्हों ने प्रवासी भारतवासियों की दुर्दशा को देख कर वहां के मंत्रियों से इस विषय पर वार्तालाप किया। इस भेंट का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्हों ने भारतीयों के

कष्ट निवारण करने का वचन दिया। प्रवासी भारतवासी श्रीयुत गोखले के उपकार को कभी न भूलेंगे। उन के उद्योग से नेटाल को प्रतिज्ञाबद्ध कुलियों का जाना बंद हुआ। माननीय गोखले मुफ़्त और अनिवार्य्य शिक्षा देने के बड़े पक्षपाती थे। इसी लिये उन्हों ने इस आशय का एक अत्यन्त उपयोगी और महत्त्वपूर्ण बिल कौंसिल में उपस्थित किया था—परन्तु दुर्भाग्य वश वह स्वीकृत नहीं हुआ। यदि मान० गोखले कुछ दिन और जीवित रहते तो यह बिल पास हुए बिना न रहता।

सन् १९१३ ई० में हमारे चरितनायक पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य नियत किये गये। यद्यपि इस कमीशन का अन्तिम परिणाम अभी तक प्रगट नहीं हुआ है तथापि इसमें कोई सन्देह नही है कि उन्होंने इसमें पूर्ण योग देकर भारतवासियो का यथोचित् हित साधन किया है।

अभी कुछ दिन पूर्व श्रीमान् लार्ड हार्डिंग महोदय ने माननीय गोखले को के. सी. आई. ई की उपाधि से विभूषित करना चाहा था। परन्तु देशसेवा में व्याघात न पहुंचने के भय तथा अपनी स्वाभाविक सरलता के कारण उन्हों ने लाट सा० की इस कृपा के लिये कृतज्ञता प्रकट करते हुए उपाधि लेना अस्वीकृत कर दिया। उन की इस बात से पता लगता है कि वे कैसे नि स्वार्थ देशसेवक थे। उन्हे नाम की अपेक्षा देशसेवा करना ही अधिक पसंद था।

माननीय गोखले ने देशसेवा के लिये जीवन भर प्रयत्न किया। उनका राजनैतिक ज्ञान बहुत उच्चकोटि का था। उन का सर्कार से व्यक्तिगत कोई झगड़ा न था। उन्हो ने देशभक्ति से प्रेरित होकर ही कई सरकारी कामों का विरोध और अपने

प्रस्ताव के पक्ष में आन्दोलन किया है। इस देश में माननीय गोखले के सिवा किसी को ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ कि जिस का आदर सन्मान राजा और प्रजा दोनों पक्ष के लोग समान रूप से करते हों।

माननीय गोखले की जीवनी में सब से महत्व और ध्यान देने योग्य बात यह है कि वे अपने ही उद्योग से सर्वमान्य हुए। कई बातों में उन की समता करने वाला पुरुष केवल भारत में ही नहीं बरन संसार में मिलना कठिन है। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि भारत माता के सच्चे सपूत भारत-वासियों के नयनों के तारे माननीय गोखले का देहान्त अभी १६ फरवरी सन् १६१५ को हो गया! उन की मृत्यु से भारत-वर्ष को जो हानि पहुंची है उस का अनुमान करना कठिन है। समस्त शिक्षित समुदाय माननीय गोखले की मृत्यु से दुखित हुआ है। सरकार ने भी स्कूल कालेज और कचहरियां बंद करके और कलकत्ता गवर्नमेंट हाउस की आधी पताका गिरा कर अपना हार्दिक शोक प्रकट किया है। इंग्लेण्ड के प्रायः सभी समाचार पत्रों ने गोखले की मृत्यु पर शोक सूचक लेख लिखे हैं; स्वयं सम्राट् ने माननीय वाइसराय के द्वारा शोक सूचक संदेशा भेजा है।

श्रीयुत गोखले की मृत्यु से भारतवर्ष को असीम हानि पहुंची है। ईश्वर न जाने कब भारत में माननीय गोखले के समान कर्मवीर पुरुष उत्पन्न करके इस बड़ी कमी को पूर्ण करेगा।

आदर्श-चरितावली।

तृतीय परिच्छेद।

पौराणिक-आदर्शचारित्र।

महात्मा भरत।

हमारी मातृभूमि सदा से ऐसे नररत्नों को प्रसव करती आई है कि जिनके यश सौरभ से आज भी सारा संसार मुग्ध हो रहा है। महात्मा भरत ने उस पवित्र कुल में जन्म धारण किया था कि जिस में हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवान, रघु जैसे प्रतापी, और प्रताप जैसे देशभक्तों ने जन्म धारण कर के भारत माता का मुख उज्ज्वल किया। जिस राज्य-लोभ ने मुंज के समान विद्वान् और नीतज्ञ राजा को अपने वश में कर लिया, और जिस राज्यलोभ से प्रेरित होकर यवन बादशाहों ने सहोदर भाइयों के सिरों को कटवा लिया उसी राज्यलोभ को महात्मा भरत ने तिनके के समान परित्याग कर दिया। महात्मा भरत तुम धन्य हो! क्या भारतवर्ष के सिवा समग्र संसार में भ्रातृ-प्रेम का ऐसा उत्कृष्ट उदाहरण मिल सकता है? कदापि नहीं।

जब महात्मा भरत ननहाल से लौट कर अयोध्या आये तब उन्हों ने राज महल में सर्वत्र उदासी देख, शंकित मन से माता केकयी के गृह में प्रवेश किया। केकयी ने उठकर पुत्र

को हृदय से लगा लिया। भरत ने व्यग्रचित्त से कहा—"माता, आज नगर में वह आनन्द कोलाहल क्यों नहीं सुनाई देता? राजमहल में उदासी क्यों छाई हुई है? कुशल तो है? पिताजी कहां हैं? उन के दर्शनों के लिये मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है।" कैकयी ने उत्तर दिया—"वत्स! तुम्हारे पिता अब इस लोक में नहीं हैं।"

"या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः।" इन शब्दों को सुनते ही महात्मा भरत लकड़ी के समान धरती पर गिर पड़े। कुछ समय के पश्चात् अपने हृदय को सँभाल कर उठ खड़े हुए और कहने लगे -"प्रिय पिता के दर्शनों के हेतु मैं बड़ी उत्सुकता से आया था, परन्तु हा विधाता! तू ने यह क्या किया? हे माता, पिता की मृत्यु का क्या कारण है? उन के बिना यह राजप्रासाद भयावना दिखाई देता है। धर्मात्मा रामचन्द्र, माता जानकी और प्रिय लक्ष्मण कहाँ है? वे क्यों नही दिखाई देते है?

कैकेयी ने अपनी सारी करतूत कह सुनाई। वह समझती थी राज्याभिषेक का समाचार सुन कर भरत प्रसन्न होंगे और पितृ-वियोग-जनित दुःख भूल जावेंगे। परन्तु फल बिलकुल उल्टा हुआ। सहस्रों बिच्छुओं के एक साथ काटने के समान भरत को दारुण कष्ट होने लगा। तब पुत्र को सान्त्वना देती हुई कैकेयी ने कहा "हे वत्स! तुम क्यों दुखित होते हो, राजा वृद्ध थे उन का मरना सांसारिक नियमानुसार स्वाभाविक ही है। मैंने तुम्हारे लिये ही यह सब काररवाई की है। अब तुम इस व्यर्थ शोक को छोड़ कर उत्तम ब्राह्मणों के द्वारा राज्याभिषेक कराओ और नीति पूर्वक प्रजा-पालन करो।" माता के वचनों को सुन कर

भरत का क्रोध और भी बढ़ गया और वे कहने लगे—हे दुष्टे! तू ने यह क्या अनर्थ किया? तू ने मुझे और भैया रामचन्द्र को पृथक दृष्टि से देखा! तू नहीं जानती कि वे मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। भैया रामचन्द्र और पिता के बिना मुझे यह राज्य विषतुल्य जान पड़ता है। क्या रामचन्द्रजी अपनी जननी कौशल्या से तुझे कम समझते थे? तू ने उन को बनवास देकर उस का कैसा उलटा प्रतिफल दिया! हाय! तू ने आनन्द से भरे हुए इस नंदनकानन को दुःखों का जंगल बना दिया!" महात्मा भरत में अपार भ्रातृप्रेम था, राज्य-लोभ उसे ज़रा भी कम न कर सका। उन्हों ने क्रोध के आवेश में कैकेयी से जो कटु शब्द कहे, उन के लिये वे दोषी नहीं कहे जा सकते। उन का वह क्रोध उचित और सराह-नीय था।

जब शोकसंतप्त-भरत अवरुद्ध कंठ से माता कैकेयी की भर्त्सना कर रहे थे। उस समय उन के क्रोधयुक्त शब्द वायु से आन्दोलित होकर कौशिल्या के कानों तक पहुंचे। भरत के कंठ स्वर को पहिचान कर उन्हों ने सुमित्रा से कहा—मालूम पड़ता है कि उस क्रूरकर्मा कैकेयी का पुत्र भरत आ गया है, मैं उसे देखना चाहती हूं। ऐसा कह कर वे उसी ओर को चलने लगीं। इतने में वहां से भरत और शत्रुघन आते हुए दिखाई दिये। माता कौशिल्या का शोकसंतप्त बदन देख कर दोनों भाई व्याकुल होकर उन के चरणों पर गिर पड़े। कौशिल्या ने उन्हें उठा कर हृदय से लगा लिया। उस समय महात्मा भरत ने अपने मन में यह अनुमान किया कि कहीं माता कौशिल्या मुझे कैकयी के इस क्रूरकर्म में सम्मिलित न सम-झती हों; अतएव उन्हों ने शपथ खाकर कहा—हे माता, कैकेयी के इस क्रूरकर्म से मेरा तिलमात्र भी सम्बन्ध नहीं है यदि हो

तो सौ ब्रह्महत्या या सौ नगर जला देने से जो पाप होता है उस का मैं भागी होऊँ। हा विधाता! पापिनी माता के कारण मुझे कैसा लांछन सहन करना पड़ा! इतना कहते २ वे उखड़े वृक्ष की नाईं ज़मीन पर गिर पड़े। माता कौशिल्या ने उन्हें उठा कर हृदय से लगा लिया।

इसके पश्चात् भरत ने चित्रकूट जाकर रामचंद्र को लौटा लाने की इच्छा प्रकट की। जिसे सुन कर माताओं को बड़ा सन्तोष हुआ।

दूसरे दिन प्रातःकाल गुरु वशिष्ठजी की आज्ञानुसार भरत ने विधिपूर्वक राजा का शव संस्कार किया। इस के पश्चात् महात्मा भरत ने वन जाकर रामचन्द्रजी को लौटा लाने का प्रस्ताव किया। भरत के वचनों को सुन कर लोगों ने उन की बड़ी प्रशंसा की और उन के इस प्रस्ताव को पसंद किया। अयोध्यावासी लोगों ने भी साथ चलने का आग्रह किया। बस फिर क्या था, वन जाने की शीघ्र ही तैयारी होने लगी। गुरु वशिष्ठ, मंत्री और उच्च राजकर्मचारी लोग अपने अपने रथों पर सवार होकर चलने लगे। राजमाताएं पालकी पर सवार होकर चलीं। चतुरंगनी सेना और समस्त नगरनिवासीजन भी रवाना हुए। महात्मा भरत आगे आगे पैदल चलने लगे। लोगों के हज़ार समझाने पर भी वे रथ पर सवार न हुए। सब लोगों ने त्रिवेणी तट पर भरद्वाज मुनि के आश्रम में रात्रि को निवास किया। प्रातःकाल होते ही सब लोगों ने फिर प्रस्थान किया।

इधर चित्रकूट में श्रीरामचन्द्रजी बैठे हुए लक्ष्मण से सम्भाषण कर रहे थे, इतने में आकाश में धूल उड़ती हुई दिखाई दी। उसे देख कर उन्होंने कहा—"लक्ष्मण लक्ष्मण!

देखो, आकाश मंडल धूल से आच्छादित हो गया है, वन्य-पशु सेना की आहट पाकर इधर उधर भाग रहे हैं, मालूम पड़ता है कि कोई सेना सहित आ रहा है। किसी ऊंचे पेड़ पर चढ़ कर देखो किस की सेना है।"

कुछ समय के बाद लक्ष्मण ने आकर कहा—"महाराज! कई सघन वृक्षों के बीच में भरत की कोबिदार चिन्हित रथ-पताका दिखाई देती है। मालूम पड़ता है कि भरत चतुरंगनी सेना सहित आ रहे हैं। क्या राज्य पाकर भी वे सन्तुष्ट नहीं हुए? समझ पड़ता है कि वे हम लोगों को मार कर निष्कण्टक राज्य किया चाहते हैं। आज मैं इसी समर में उनको मार कर उन्हें स्वर्ग के निष्कटक राज्य में भेजूंगा"।

रामचन्द्रजी ने भरत की प्रशंसा कर के कहा—"वत्स लक्ष्मण! तुम्हारा विचार ठीक नहीं है। भरत हम लोगों को लौटाने को आते होंगे। क्योंकि उन के समान महात्मा और निर्लोभी पुरुष संसार में दूसरा नहीं है। तुम्हें व्यर्थ ही भरत पर सन्देह न करना चाहिये"।

इस तरह सम्भाषण हो ही रहा था कि इतने में शोक-सन्तप्त भरत आ पहुँचे। पर्णकुटी में सीता सहित रामचन्द्र को कुशों की आसन पर बैठे देख कर वे अपने दुःख को संवरण न कर सके और उच्चस्वर से रोदन करके कहने लगे "कि जिस मस्तक के ऊपर हेमछत्र सुशोभित होता था उस पर आज जटाओं का भार बढ़ रहा है; जो देह सुगन्धित द्रव्यों तथा घिसे चन्दन से चर्चित होती थी, उसी पर आज धूल चढ़ रही है; समस्त विश्व का पूजनीय व्यक्ति आज भिखारी बना हुआ है!! हा! इन सब अनर्थों की जड़ मैं ही हूं। मेरे जीवन को धिक्कार है! ऐसा कहते हुए वे रामचन्द्र

जी के चरणों पर गिर पड़े। रामचन्द्रजी ने उन्हें उठा कर गले लगा लिया और उन को धीरज देकर बड़े प्रेम से पूछा— हे तात! पिताजी कहां है, तुम उनको छोड़ कर यहां कैसे आये? हमारी तीनों माताएं और पिताजी कुशल पूर्वक तो हैं? भरत ने धीरज रख कर कहा—"हे आर्य! मुझ अभागी की कुटिल माता के द्वारा किये हुए आप के निर्वासन से पीड़ित होकर पिताजी स्वर्ग को सिधारे। अब आप मुझ दासानुदास पर दया करके अयोध्या चलिये और राज्याभिषेक को स्वीकृत कीजिये।" इस तरह विनीत वचन कह के भरत ने अपना मस्तक रामचन्द्रजी के चरणों पर रख दिया। पिता की मृत्यु का सम्वाद सुन कर रामचन्द्रजी को बड़ा दुख हुआ। फिर उन्होंने भरत से प्रेमपूर्वक कहा— "भाई! मैं राज्य के लिये धर्म की मर्यादा नहीं छोड़ सकता। पिता ने मुझे वनवास की आज्ञा दी है मैं उन की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। हे भरत! तुम अयोध्या जाओ और पिता की आज्ञानुसार राज्यभार ग्रहण कर प्रजापालन करो।"

भरत ने कहा—हे नरश्रेष्ठ! अपने कुल की यह रीति है कि ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है कनिष्ठ नहीं। अतएव आप अयोध्या चल कर राज्याभिषेक कराइये। इस तरह महात्मा भरतजी रामचन्द्रजी से अयोध्या लौट चलने के लियेबारंबार प्रार्थना करने लगे। मत [illegible], मन्त्रियों तथा नगर निवासियों ने भी खूब आग्रह किया। परन्तु उन्होंने भरत से यही कहा कि तुम धर्मात्मा हो तुम्हारा स्नेह हम भलीभांति जानते हैं; अब तुम्हें अधिक कहने [illegible] की आवश्यकता नहीं है, मैं १४ वर्ष [illegible] प्रतिज्ञा कर चुका हूं—उसे मैं किसी तरह अन्यथा [illegible] कर सकता। तुम

लौट जाओ और राज प्रबन्ध करो। इस समय तुम्हारा यही धर्म और कर्तव्यकर्म है। वनवास की अवधि समाप्त होते ही मैं भी अयोध्या को लौट आऊंगा।"

जब महात्मा भरत ने अनेक तरह से रामचंद्रजी के लौटाने की चेष्टा की और वह फलवती न हुई, तब उन्हों ने रामचन्द्रजी के उपदेशों को शिरोधार्य कर उन की चरणपादुका ले अयोध्या को प्रत्यावर्तन किया। अयोध्या आकर उन्होंने उन चरण पादुकाओं को राज सिंहासन पर रख दी और वे मुनिवेश धारण कर, सिर पर जटा रखा, ब्रह्मचर्य पूर्वक गांव से बाहर पर्णकुटी में निवास करने लगे। उन्हों ने उसी दिन से समस्त सुखों को तिलांजलि दे दी और योग्यता पूर्वक श्रेष्ठ मन्त्री की नाईं राजकार्य संभालते हुए, रामचन्द्रजी के आने की प्रतीक्षा करने लगे। महात्मा भरत के स्वार्थ त्याग और भ्रातृप्रेम को धन्य है! जब श्रीरामचन्द्रजी बन से लौट कर अयोध्या आये तब भरत ने उसी दिन उन्हें राज्य सौंप दिया और जीवन भर उन की आज्ञा प्रतिपालन करते रहे। गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरितमानस में महात्मा भरत की इस तरह प्रशंसा लिखते हैं।

भरत हंस रवि-वंश तड़ागा।
जनमि कीन गुण दोष विभागा॥
गहि गुण पथ तजि अवगुण वारी।
निज यश जगत कीन उजयारी॥

दधीचि ।

हमारे पुराणों में ऐसे कई दृष्टान्त मिलते हैं कि जिन से परोपकार की पराकाष्ठा पाई जाती है। परन्तु खेद है कि उन्हीं पूज्य पूर्वजों की सतानों में आज कल परोपकार का प्रायः ह्रास ही हो चुका है। लोग रात दिन अपने ही स्वार्थों में लगे रहते हैं, जिन कामों से अपने सुख-स्वच्छन्दता की वृद्धि होती है— वही काम करते हैं। सिर हिला कर परोपकार करना भी उन्हें कष्टकारी जान पड़ता है। ऐसी बुरी आदत न डालना चाहिये—अपनी शक्ति के अनुसार परोपकार करने के लिये सदैव उद्यत रहना चाहिये। छुटपन से ही सब के प्रति स्नेह और ममता दिखाना उचित है। भूखे को देखते ही उसे एक मुट्ठी अन्न देने की इच्छा उत्पन्न होना चाहिये। प्यासे को पानी और वस्त्रहीन को वस्त्र देना चाहिये। शीतल और मधुर वचनों से दीन दुखियों का दुःख दूर करना चाहिये। अन्धे, लूले और पथभ्रान्त को पथ बतला कर उसके प्रति दया प्रकाशित करना चाहिये। यदि अपने द्वारा दूसरे का काम निकलता हो तो अपने ज़रा से परिश्रम की ओर ध्यान न देकर, दूसरों को सहायता पहुँचाने से न चूकना चाहिये। इस तरह छुटपन से परोपकार का अभ्यास करते २ वयो-वृद्धि के साथ साथ परोपकार करने की प्रवृति भी बढ़ाई जा सकती है। ऐसे अभ्यासशील व्यक्तियों में कई एक ऐसे भी निकलते हैं जो परोपकार के लिये अपना जीवन तक दे डालने में संकोच नहीं करते हैं। इस जगह एक ऐसे ही

महर्षि का वृतान्त लिखा जाता है कि जिन्होंने परोपकार के लिये हँसते हँसते अपना जीवन समर्पण कर दिया था।

पुराणों के पढ़ने से जाना जाता है कि प्राचीन समय में देवता और राक्षसों का सदैव वैर भाव रहता था—वे कभी हिल मिल कर नहीं रहते थे। जब राक्षस गण प्रबल होते थे तब देवगण उनके भय से थरथर कांपते थे। उनके अत्याचारों से इन के धर्म, कर्म, यज्ञादि सब लोप हो जाते थे। देवगण मुक्त कंठ से बात नहीं कर सकते थे। सुवर्ण की थाली में अमृतोपम भोजन करके भी वे सुखी नहीं रह सकते थे। सुवर्ण के पर्यंक पर दुग्धफेन सदृश शुभ्र कोमल शय्या पर उन्हें निद्रा न आती थी।

एक बार देवलोक में भयानक युद्ध छिड़ गया। एक ओर देवताओं के सेनापति हुए देवराज इन्द्र, और दूसरी ओर राक्षसों के सेनापति हुए दैत्यराज वृत्रासुर। दोनों दलों में तुमुल युद्ध होने लगा। कभी देवगण और कभी असुरगण जय ध्वनि से आकाश को कम्पित करने लगे। वृत्रासुर के असीम साहस और प्रबल प्रताप के सन्मुख, देवता लोग अधिक समय तक न ठहर सके। युद्ध में देवताओं की हार हुई। वृत्रासुर विजयी होकर इन्द्रलोक में पहुंचा और विजय का डंका बजाता हुआ देवलोक को पददलित करने लगा। दुःख और लज्जा से देवराज का मुख मलिन पड़ गया। अभिमान और ग्लानि से नेत्रों में अश्रुबिन्दु आ गये। निदान लाचार होकर उन्हें वहाँ से भाग कर अपनी रक्षा करनी पड़ी।

देवगण निरुपाय होकर ब्रह्मदेव के समीप पहुंचे। ब्रह्मा ने कहा—"वृत्रासुर की मृत्यु देवताओं के हाथ से नहीं है। तुम लोग विष्णु के पास जाओ, वे तुम्हें उपाय बतलावेंगे।"

ब्रह्मदेव को साथ लेकर देवगण विष्णु के समीप पहुँचे। देवताओं की आपत्ति से भगवान् दुःखी हुए, उनके नेत्रों में जल भर आया। विष्णु ने कहा—वृत्रासुर हमारा परमभक्त है, हम उसे नहीं मार सकते। तुम लोग दधीचि मुनि के पास जाकर उन से अस्थियों की भिक्षा मांगो। उन की अस्थियों से जो वज्र बनेगा उस से वृत्तासुर मारा जायगा। दधीचि मुनि बड़े दयालु हैं, परोपकार करना उनके जीवन का व्रत है। परोपकार के लिये जीवन देने में वे कभी कातर न होंगे।"

देवताओं को साथ लेकर देवराजइन्द्र, दधीचि मुनि के आश्रम में पहुंचे। मुनि ने आदर पूर्वक उनकी अभ्यर्थना की और उनके आने का कारण पूछा। परन्तु ऐसी निष्ठुर बात कहने का उन को साहस न हुआ। मुनिराज ने ध्यानस्थ होकर इनके मन की बात जान ली। उन्होंने कहा—"देवराज! हमारा बड़ा सौभाग्य है, आज हमारा जीवन सफल हुआ। हमारे शरीर की जीर्ण हड्डियां धूल में न मिल कर देवताओं के काम आवें इस से बढकर मेरा और क्या सौभाग्य हो सकता है? यदि मेरी अस्थियों से सारे देवताओं की रक्षा होती है, तो मैं प्रसन्नता पूर्वक प्राण त्याग करने को तैयार हूं।"

दधीचि मुनि के प्राण त्याग की तैयारी देख उनके शिष्यगण शोकाकुल हो अश्रुवर्षण करने लगे। मुनिराज ने उन्हें सान्त्वना देकर कहा—"हमारा यह बड़ा सौभाग्य है कि हमारी अस्थियाँ परोपकार के लिये काम आईं। तुम लोग क्यों व्याकुल होते हो। संसार में रात दिन लाखों प्राणी मरते हैं परन्तु परहित के लिये प्राण देने का सौभाग्य कितनों को मिलता है? मिट्टी का शरीर दो दिन पीछे मिट्टी में मिल

जावेगा। यदि इस नश्वर शरीर से परहित साधन न हुआ तो जानो कि उस का होना व्यर्थ ही है। संसार की भलाई करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। यदि हम किसी के काम न आवे, किसी के दुःख में शामिल न होकर उसके दुख मोचन का उपाय न करें तो मनुष्य का जन्म धारण करके हम ने क्या किया? माता ने ९ मास गर्भ धारण करने का व्यर्थ ही कष्ट सहा।"

इस तरह शिष्यों को आश्वासन देकर दधीचि मुनि ध्यानस्थ होकर बैठ गये। शिष्यगण उच्च स्वर से वेदोच्चार करने लगे। देखते देखते मुनिराज के नेत्र बंद हो गये, नासिका से स्वाँस का आना जाना रुक गया। रक्त वाहिनी नाडियों मे रुधिर का प्रवाह बंद हो गया। शरीर निश्चल हो गया। ब्रह्मरन्ध्र भेद कर ब्रह्मतेज बाहर निकल गया! आकाश से शंख ध्वनि और पुष्प वृष्टि होने लगी! दधीचि मुनि ने परोपकार के लिये जीवन दान दिया! मुनिराज तुम्हें धन्य है! तुम मृत होकर भी अमर हो!!!

इन्द्र ने दधीचि की अस्थियां ले जाकर विश्वकर्मा को दीं। समस्त अस्त्रों का तेज एकत्र करके दधीचि मुनि की अस्थियो से वज्र बनाया गया। इसी वज्र से वृत्रासुर की मृत्यु हुई। दैत्यराज की मृत्यु से देवगण निर्भय हुए और उनके मुख पर फिर प्रसन्नता झलकने लगी। देवलोक में फिर सुख शान्ति विराजमान हुई।

महाराज शिवि।

चन्द्रवंशी राजाओं में महाराज शिवि का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वे बड़े प्रतापी धर्मवान् और प्रजाहितैषी थे। इस देश के पुराने क्षत्रिय राजा अपना प्रण पालने में परम प्रसिद्ध हैं। राज पाट, धन दौलत और यहां तक कि वे अपने प्राणों तक को धर्म के सामने तुच्छ समझते थे। क्षत्रियोचित रीति के अनुसार महाराज शिवि शरणागत की रक्षा करने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। शरण आये हुए की रक्षा करना वे अपना परम धर्म समझते थे। एक दिन महाराज शिवि मंत्रियों सहित अपनी सभा में बैठे थे, इतने में एक कबूतर भय के मारे थर थर कांपता हुआ बड़ी शीघ्रता से राजा के सामने आकर गिरा और वह कहने लगा—"महाराज! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये पीछे से श्येन (बाज) आ रहा है" इतना कह के वह राजा की गोद में जा छिपा। राजा ने उसके सिर पर हाथ फेर कर उसे अभय दान दिया, परन्तु तौ भी उसका भय दूर न हुआ और वह राजा के हृदय से जा चिपटा। पीछे से बाज भी उड़ता हुआ आया और अपनी शिकार को राजा द्वारा रक्षित देख कर कहने लगा—"हे राजन्! आप नीति जानने वालों में श्रेष्ठ और धर्मवान् हैं, किसी का आहार छीन लेना यह कौन सा धर्म है? इस को आप स्वतः विचार करें। आप राजा हैं किसी एक का पक्ष ग्रहण करना आप को शोभा नहीं देता—एक को तो आप आहार छीन कर भूखों मारें और दूसरे की रक्षा करें, यह कहां का न्याय है? आप क्षत्रिय हैं मृगया के नियमों को

भलीभांति जानते हैं, आपको दूसरे की घेरी हुई शिकार को रख कर शिकार सम्बन्धी नियमों को तोडना उचित नहीं है। जीव ही जीव का आहार है, यह हमारा तुम्हारा नहीं बल्कि ईश्वर का विधान है। अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप मेरे भक्ष्य को मुझे देने की कृपा कीजिये।"

बाज की बातों को सुनकर राजा ने कहा—' हे पक्षिश्रेष्ठ ! सुनो, हमारा जन्म प्रसिद्ध क्षत्रिय कुल में हुआ है। अपने कुल की धर्म्म मर्यादा का पालन करना हमारा मुख्य कर्तव्य है। तुम जानते ही हो कि क्षत्रिय लोग शरणागत की रक्षा किये बिना नहीं रह सकते हैं। प्राण भले ही चले जाँय परन्तु प्रण नहीं जा सकता। निर्बलो और शरण आये हुए की रक्षा करना हमारा धर्म है। दूसरे, निर्बलों का पक्ष ग्रहण करने में कोई अन्याय नहीं है, कई दुष्ट लोग सबल होकर निर्बलों को सताते हैं, दीनों की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। मैं मृगया के नियमों की कुछ भी परवा नहीं करता और न उस से प्रीति ही रखता हूं। जिन शास्त्रों में लिखा है कि जीव जीव का आहार है, उन्हीं में अहिंसावाद का प्रतिपादन भी किया गया है, फिर मैं शास्त्रोक्त अहिंसा धर्म का पालन क्यो न करूं ? मैं तुम्हें भूखा नहीं रखने चाहता हूँ। आहार की कोई कमी नही है सुमिष्ट फल, उत्तम उत्तम भोजन जो तुम्हारी इच्छा हो खाओ। यदि तुम माँस ही खाना चाहते हो तो वह भी मिल सकता है। पर कबूतर नहीं मिल सकता।

राजा का युक्ति पूर्ण उत्तर सुनकर बाज ने कहा—"हे राजन् ! मैं शिकारी जीव हूं। मैं नित्य मृगया करके ताजा मांस खाया करता हूं। मर्दे का मांस खाना मुझे पसन्द नहीं

है। यदि आप कबूतर के बराबर अपने शरीर का मांस मुझे दे सकें तो मैं उसे खा सकता हूं। परन्तु एक साधारण कबूतर के लिये आप अपने राजसी सुख भोगों को परित्याग कर दुःख में पड़े यह उचित नहीं जान पड़ता है। अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप उस कबूतर को दे डालिये—ज़रा सी बात के लिये आपको संकट में पड़ना उचित नहीं है।"

राजा ने हँस कर कहा—"हे बाज! तुम्हारे कथनानुसार कबूतर के बराबर मैं अपने शरीर का मांस देने को तैयार हूं। क्षत्रिय लोग प्रण पालन करने में अपने प्राणों का कुछ भी मोह नहीं करते हैं। क्योंकि यह शरीर और ये सारे राजसुख तथा ऐश्वर्य्य नश्वर हैं। एक न एक दिन इन को परित्याग करना ही पड़ेगा फिर यदि इन के द्वारा किसी का कुछ उपकार हो सके तो इनके परित्याग करने में संकोच ही क्या? आज मैं अपने को धन्य समझता हूं, इस नश्वर शरीर के परोपकार में लगने से मेरा जीवन सफल हो जावेगा। ऐसा कह के राजा ने तराजू मगाई और उन्हों ने एक ओर कबूतर को बिठलाया और दूसरी ओर अपने शरीर का मांस काट काट कर रखना प्रारम्भ किया। धीरे धीरे सारे शरीर का मांस काटकर तराजू पर चढा दिया, पर तो भी वह कबूतर के बराबर न हुआ। तब राजा ने तलवार से अपने सिर को उतार कर तराजू पर चढ़ाना चाहा। उसी समय बाज ने मानव शरीर धारण कर राजा के हाथ से तलवार छीन ली। इस आश्चर्य को देख कर राजा बहुत चकित हुए। राजा की भूरि भूरि प्रशंसा करके वह कहने लगा—"हे राजन्! तुम्हारे धर्म की परीक्षा हो चुकी, तुम्हें धन्य है! मैं राजा इन्द्र हूं, तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये ही मैंने बाज का और अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया था। तुम्हारे अटल प्रण और अपार धैर्य्य को

देख कर मुझे परम संतोष हुआ, तुम इच्छानुसार बर मांगो।'

राजा के शरीर की वेदना तत्काल दूर हो गई और अग्नि तथा इन्द्रदेव राजा शिवि को इच्छित बरदान देकर अपने लोक को चले गये।

भारतवर्ष धर्मप्राण भूमि है, दीन दुखियों और निर्बलों की सहायता करना तथा शरणागतों को अभयदान देना आर्य लोगों का आदि कर्तव्य है। हमारे पुराणों में ऐसे एक दो नहीं सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं। हम लोगों को अपने पूर्वजों के इन गुणों का सर्वथा अनुकरण करना उचित है।

गरीबी में विद्याभ्यास— गरीबी में दृढ़ परिश्रम द्वारा विद्याभ्यास करने वाले कई सज्जनों के चरित्र। मूल्य तीन आना।

चरित्र गठन और मनोबल—राल्फ वाल्डो ट्राइन की पुस्तक का अनुवाद मूल्य तीन आना।

प्रतिभा—हिन्दी का सर्वोत्तम उपन्यास १)

मितव्ययिता (किफायतसरी) ॥=)

फूलों का गुच्छा—उत्तम उत्तम खंड उपन्यासों का संग्रह ॥=)

स्वदेश—रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बंगाली पुस्तक का अनुवाद ॥=)

शिक्षा— " " " ॥=)

कहानियों की पुस्तक—उत्तम शिक्षाप्रद कहानियों का अपूर्व संग्रह विद्यार्थियों के लिये बहुत बहुत उपयोगी है।)

अमेरिका का गृहप्रबंध—ले० मिसेज सेंट निहालसिंह -)

विद्यार्थी जीवन का उद्देश्य—एक विद्वान का लिखा -)

मनुष्य कर्तव्य का परिचय -)

भारतीय किसान)॥, विनोद (कविता) =)

दियातले अंधेरा - स्त्री शिक्षा की उत्तम गल्प -)॥

धर्मदिवाकर —नैयायिक और वेदान्तियों का विवाद।)

गृहिणी-भूषण।

स्त्रियों के लिये इससे अच्छी पुस्तक एक भी नहीं है। छपाई सफ़ाई बहुत बढ़िया—मूल्य आठ आना मात्र। इसके विषय में प्रतिष्ठित पत्र सम्पादकों की क्या राय है, पढ़िये—

लक्ष्मी (अप्रैल सन १६१४) गृहिणी भूषण— 'पुस्तक बहुत

ही अच्छी है। स्त्रीशिक्षा के प्रबंधकों को अपनी २ शालाओं में इस पुस्तक का प्रचार कराना चाहिये। जितनी बातें एक सुशील स्त्री के लिये दरकार हैं उन सब के विषय में इसमें उत्तम २ उपदेश और सिद्धान्त लिखे हैं।"

सरस्वती—(मई सन १९१४) "गृहिणी भूषण—बड़ी अच्छी पुस्तक है। इसे गृहिणियों का भूषण नहीं, कंठ भूषण कहना चाहिये।"

जैनहितैषी—युग्मअंक, चैत्र बैसाख, वीर नि० सं० २४४०—"गृहिणी भूषण—ले० प० शिवसहाय चतुर्वेदी। कन्याएं जब पत्नी बनती हैं, तब से लेकर जब वे गृहिणी, माता और संतान रक्षिका बन जाती हैं, तब तक काम में आने वाली सब प्रकार की अच्छी बातें सिखलाने के लिये यह पुस्तक लिखी गई है। स्त्री का पति के प्रति, माता पिता के प्रति, संतान के प्रति, संबंधियों के प्रति, पडोसियों के प्रति, क्या २ कर्तव्य हैं, उसे अपना स्वभाव रहन सहन, बर्ताव आदि कैसा रखना चाहिये; सतीत्व, विनय, शिष्टाचार, लज्जाशीलता, गंभीरता, संतोष, सद्भाव, चरित्र आदि गुणों की व्याख्या, शरीर रक्षा, हिसाब किताब गर्भ रक्षा, संतान पालन, गृहकर्म जानने की आवश्यकता आदि सभी उपयोगी विषयों की शिक्षा दी गई है। भाषा शुद्ध और सुगम है। स्त्रियों में इस पुस्तक के प्रचार की बडी आवश्यकता है।"

स्त्री-दर्पण—(मई १९१४) "किताब बहुत अच्छी है। गृहिणी भूषण का प्रचार प्रत्येक गृहस्था में होना चाहिये।"

पता—हिन्दी हितैषी कार्यालय,
देवरी (सागर) म० प्र०

अखौरी कृष्णप्रकाश सिंह